हिन्दुस्तान

नई दिल्ली, गुरुवार, 20 अगस्त, 1998

पैसे वालों को डॉक्टर बनाने का खेल

वर्ष 1994 से भारतीय मेडिकल कौंसिल (एम. सी. आई.) के तीन अध्यक्ष स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय को यह परामर्श देते रहे हैं कि पूर्व सोवियत संघ के 29 मेडिकल कॉलेजों को दी गयी मान्यता समाप्त कर दी जाये। लगभग एक हजार भारतीय डॉक्टर इन कॉलेजों में विभिन्न एजेंसियों के जरिये तीन हजार से पांच हजार डालर तक की फीस अदा करके प्रवेश पाते हैं और इन विश्वविद्यालयों से स्नातक होने के बाद प्रैक्टिस करने भारत लौट आते हैं।

एम. सी. आई. का कहना है कि इन डॉक्टरों का स्तर घटिया होता है और वह हजारों भारतीयों की जान से खिलवाड़ करने को तैयार नहीं है, जिन पर ये डॉक्टर अपना अधूरा ज्ञान और कौशल आजमायेंगे। इन कॉलेजों में अगस्त-सितम्बर से दाखिले शुरू हो जाते हैं परन्तु एमसीआई के तेरह सदस्यों की एकमत से की गई सिफारिश और मंत्रालय के अधिकारियों के समर्थन के बावजूद, स्वास्थ्य मंत्री, दलित एझिलमलै फाइल दबाये हुए हैं। छात्रों के इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेने के बाद इन कॉलेजों की मान्यता रद्द करना न्यायसंगत और उचित नहीं होगा।

बल्कि एमसीआई का तो मानना है कि भारत में उपलब्ध प्रशिक्षण सुविधाएं हमारी चिकित्सा कर्मियों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त हैं। रूस और उक्रेन में स्नातक स्तर पर जो प्रशिक्षण दिया जाता है, वह भारत में काम करने के लिए एमसीआई द्वारा निर्धारित स्तर का नहीं है। बताया जाता है कि छात्रों को रूस भेजने से देश को प्रति वर्ष 20 करोड़ डालर की विदेशी मुद्रा गंवानी पड़ती है। इस पैसे का सदुपयोग भारत में आधा दर्जन विश्वविद्यालय खोलने के लिए किया जा सकता है।

जब 80 के दशक के उतरार्द्ध में इन मेडिकल कॉलेजों को मान्यता दी गई थी, तब स्थिति अलग थी। जून, 1986 में भारतीय मेडिकल कांउसिल और पूर्व सोवियत संघ के उच्च एवं उच्चतर विशेषज्ञ शिक्षा मंत्रालय के बीच यह समझौता हुआ था कि स्नातक पाठ्यक्रम के लिए पचास और स्नातकोत्तर मेडिकल शिक्षा के लिए भी पचास छात्रों को चुन कर भेजा जायेगा। तब प्रति छात्र दो हजार से ढाई हजार डालर तक शुल्क लिया जाता था। इस समझौते के तहत एमसीआई ने 1990 तक 205 छात्रों को भेजा। फिर अगस्त, 1991 में एमसीआई ने फैसला किया कि आगे से और छात्रों को नहीं भेजा जायेगा।

इस दौरान पूर्व सोवियत संघ का विघटन हो गया और अगस्त, 1994 में एमसीआई की कार्यकारी समिति की बैठक में यह कहा गया कि जिस मेडिकल कॉलेजो को उसने मान्यता दी थी, वे अब स्वायत्त हो गये हैं। इन कॉलेजों की गुणवत्ता और शिक्षा स्तर में गिरावट आ गयी है और 1986 का समझौत अब वैध नहीं रहा है। उसने पूर्व सोवियत संघ के 29 मेडिकल कॉलेजों की मान्यता रद्द करने का निर्णय किया।

पता लगा कि जो एजेंट छात्रों को रूस, उक्रेन और अन्य देशों में भेज रहे थे, वे केवल पैसा बनाने के लिए काम कर रहे थे, वे तीन हजार से पांच हजार डालर के बीच शुल्क के नाम पर वसूल रहे थे और दसवीं और ग्यारहवीं कक्षाओं के छात्रों को भेज रहे थे, जिनमें से बहुतों को भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र और गणित में पचास प्रतिशत नम्बर भी नहीं थे। कुछ छात्र तो कला और वाणिज्य पाठ्यक्रमों के थे और उनकी विज्ञान की पृष्ठभूमि थी ही नहीं।

चूंकि रूसी विश्वविद्यालयों को पैसे की बहुत जरूरत थी इसलिए उनकी सरकार एमसीआई की मान्यता हासिल करना चाहती थी। रूसियों के अच्छे दोस्त और पूर्व प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल उनकी मदद करना चाहते थे और उन्होंने एमसीआई की दूसरी टीम से स्थिति की समीक्षा करने को कहा। एमसीआई की दो टीमों ने गत मई में 29 में से 20 मेडिकल कॉलेजों का दौरा किया। इन टीमों में एमसीआई के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सचिव भी शरीक हुए। उन्होंने वही पुरानी मांग फिर दोहरायी कि न तो उन कॉलेजों और न ही उनकी डिग्रियों को मान्यता देनी चाहिए।

वास्तव में ये नई टीमें और भी चौंकाने वाली जानकारियां ले कर लौटीं, यह कि वहां प्रोफेसरों को इतना कम वेतन मिलता है कि वे छात्रों पर दबाव डालते हैं कि उनसे ट्यूशन पढ़ें और दस से पंद्रह डालर प्रति घंटा दें। परीक्षा के समय रिश्वत दे कर नम्बर हासिल किये जा सकते हैं। बुहत से कॉलेजों के अपने अस्पताल नहीं हैं, जहां छात्रों को क्लिनिकल प्रशिक्षण दिया जा सके तथा रूस और उक्रेन में लिखित परीक्षा को ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता। एक राय से की गई सिफारिश अब भी धूल चाट रही है कि देश के व्यापक हित में इन मेडिकल कॉलेजों को दी गयी मान्यता तुरंत रद्द कर दी जाये।

● उषा राय

प्राइवेट स्कूलों में सरकारी दखल उचित या अनुचित

क्या राज्य को निजी स्कूलों की शिक्षा व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का अधिकार है, जबकि बढ़ती संख्या में पब्लिक स्कूल ही हैं, जो देश के मेधावी और सर्वश्रेष्ठ छात्रों की प्रतिभा को उभारते, निखारते और दिशा देते हैं।

दिल्ली पब्लिक स्कूल, आर. के. पुरम की प्रधानाचार्या और राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कार विजेता, श्यामा चोना का कहना है कि जब हम इतने योग्य छात्र तैयार कर रहे हैं जो विश्व में कहीं भी सबसे अच्छे छात्रों से स्पर्द्धा कर सकते हैं तो सरकार को इस कारण हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है कि हम बेहतरीन शिक्षा के लिए वास्तविक शुल्क ले रहे हैं।

परंतु प्रतिमाह 850 रुपए से 1500 रुपये लेना क्या वास्तविक शुल्क है ? 450 से 500 स्कूल ऐसे हैं जिन्हें अनुदान नहीं मिलता और वे फीस तथा कंप्यूटर शिक्षा, विज्ञान शिक्षा, तैराकी और चिकित्सा सुविधाओं के लिए निरंतर शुल्क में वृद्धि करते रहते हैं। यह बात मध्यम वर्ग के अभिभावकों को नागवार लगती है, जो अपने बच्चों को सर्वोत्तम शिक्षा दिलाना चाहते हैं लेकिन लगातार बढ़ती महंगाई के बोझ से पहले ही दबे हुए हैं।

प्राइवेट स्कूल के प्रधानाचार्य भी यह स्वीकार करते हैं कि कुछ स्कूल केवल पैसा बनाने के लिए ही इस व्यवसाय में हैं। वे शिक्षा की दुकानें हैं और फीस का काफी हिस्सा किसी सोसायटी, ट्रस्ट या किसी अन्य व्यवसाय में लगा देते हैं। प्रधानाचार्य मानते हैं कि ऐसे स्कूलों को अनुशासित करना जरूरी है परन्तु दिल्ली सरकार की किसी न किसी बहाने हस्तक्षेप करने की कोशिश को लेकर असंतोष बढ़ रहा है। कुछ प्रधानाचार्य यह भी महसूस करते हैं कि स्कूली शिक्षा का हिन्दूकरण करने और स्वदेशी संस्कृति लादने के परोक्ष कोशिश भी की जा रही है। बच्चियां स्कूल की वर्दी में सलवार-कमीज पहनें या स्कर्ट, यह तय करना करकार का काम नहीं है। इस आदेश के लिए दलील दी गयी थी कि ऐसा बच्चों को मच्छर के काटने और डेंगू से बचाने के लिए किया जा रहा है, यह सौभाग्य से इसे वापस ले लिया गया।

स्वतंत्रता दिवस से पहले, शिक्षा निदेशालय ने सारे स्कूलों को यह निर्देश जारी किया कि झंडा फहराने के बाद सारे बच्चे सरकार द्वारा तैयार की गयी शपथ लेंगे, जिसमें उन्हें राष्ट्रवादी होने के लिए प्रोत्साहित किया गया है। दिल्ली पब्लिक स्कूल, वसंत कुंज की प्रधानाचार्या, मीता राय का कहना था कि शपथ में कुछ भी गलत नहीं था और वह धर्मनिरपेक्ष भी थी लेकिन बहुत लंबी और उबाऊ थी। उन्होंने कहा, "हम जानते हैं कि अपने विद्यार्थियों में राष्ट्रप्रेम की भावना कैसे जगाएं और हम यह एक नाटक के माध्यम से कर रहे थे, जिसमें स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाले नेताओं से आज के नेताओं की तुलना की गयी थी।"

सुश्री राय ने कहा, "शिक्षा सरकार के बस की बात नहीं है। उनके स्कूल देखें और सुचारू रूप से चलने वाले प्राइवेट स्कूल देखें। तो सरकार ऐसे स्कूल में हस्तक्षेप क्यों करती है जो अच्छी तरह चल रहा है। इन प्राइवेट स्कूलों में से ज्यादातर ने शोध किया है और शिक्षा देने के आधुनिक तरीकों का प्रयोग किया है। सरकारी शिक्षा निदेशालय का संचालन शिक्षाविद् नहीं करते बल्कि नौकरशाह करते हैं, जिन्हें शिक्षा के क्षेत्र का कोई अनुभव नहीं होता और वे तो आते-जाते रहते हैं।"

बहरहाल, इन छोटे-मोटे मुद्दों में सरकारी दखलअंदाजी से वास्तव में शिकायत नहीं है, बल्कि फीस और अन्य वित्तीय मामलों में हस्तक्षेप से है। पांचवें वेतन आयोग की सिफारिशें लागू होने पर पब्लिक स्कूलों ने पाया कि उन्हें शिक्षकों को 1996 से बकाया राशि के रूप में बहुत सारा पैसा देना होगा। सरकार की तरह राजकोष से पैसा नहीं ले सकते। श्यामा चोना का कहना है, "अगर हमने बचत न की होती, अपना पैसा बांड आदि में न लगाया होता तो हम यह अतिरिक्त बोझ न उठा पाते।" परंतु राज्य सरकार के एक क्लर्क का मानना है कि स्कूल का पैसा बैंक में होना चाहिए था, बांड में नहीं !

श्रीमती बख्शी अपने समय के सबसे प्रगतिशील प्रधानाध्यापकों में से थीं और उन्होंने सीनियर स्कूल तक वार्षिक परीक्षा लेने की परम्परा खत्म कर दी थी। उनका मानना था कि छात्रों को परीक्षा के खौफ से गुजारने से बेहतर है कि उनका निरंतर मूल्यांकन और परीक्षण करके उनकी श्रेणी तय की जाये और अगली कक्षा में भेजा जाये। लेकिन पब्लिक स्कूल के प्रबंधकों और छात्रों के अभिभावकों द्वारा की जा रही लड़ाई को देखते हुए, श्रीमती बख्शी का कहना है, "अगर राज्य को लगता है कि मामला हद से बाहर जा रहा है तो उसे हस्तक्षेप करने का अधिकार है क्योंकि शिक्षा राज्य का विषय है। हमें इसका बुरा नहीं मानना चाहिए। यह मत भूलिए कि 1973 के दिल्ली अधिनियम और नियम, जो स्कूली शिक्षा को निर्धारित करते हैं, निजी स्कूलों के स्टाफ के लिए वरदान थे। इससे पहले इन स्कूलों में अध्यापकों को पैसा कम दिया जाता था और हस्ताक्षर ज्यादा वेतन पर कराये जाते थे। 1973 के नियमों के तहत सरकारी और निजी स्कूलों में समान वेतन निर्धारित किया गया है।

राज्य के हस्तक्षेप के बारे में उनका कहना है कि सभी चीजों के दाम बढ़ गये हैं, इसलिए स्कूल की फीस तो बढ़ेगी है। लेकिन बढ़ायी गयी फीस का दुरुपयोग करना गलत है। श्रीमती बख्शी को इस पर भी आपत्ति है कि नवीं और ग्यारहवीं कक्षा में छात्रों को पुनः दाखिला दिया जाता है, जिसमें कमजोर छात्रों को निकाल कर अन्य स्कूलों के अच्छे विद्यार्थियों को नया शुल्क लेकर प्रवेश दिया जाता है। कुछ पब्लिक स्कूल ऐसा करते हैं ताकि बोर्ड की परीक्षाओं में उनके सारे छात्र प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हों और स्कूल की प्रसिद्धि हो। स्कूलों को अपने छात्रों पर ध्यान देना चाहिए और जो प्रथम श्रेणी नहीं लाते, उन्हें निकालना नहीं चाहिए।

परंतु, शिक्षा निदेशालय के 10 सितम्बर, 1997 के आदेश से श्रीमती बख्शी भी खुश नहीं हैं, जिसमें पंजीकरण शुल्क लगभग 25 रुपए तय किया गया है। ज्यादातर स्कूल दाखिला चाहने वाले छात्रों की संख्या और कागजी कार्रवाई घटाने के लिए ज्यादा पंजीकरण शुल्क लेते हैं। सरकार ने प्रवेश शुल्क 200 रुपए और जमानत राशि 500 रुपए तय की है (जो बच्चे के स्कूल छोड़ने के समय ब्याज समेत लौटानी होगी)। नर्सरी स्कूल 500 रुपए तक प्रवेश शुल्क लेते हैं, इसलिए सरकार द्वारा निर्धारित प्रवेश शुल्क 'अव्यावहारिक' है। ज्यादातर छात्र जमानत शुल्क स्कूल छोड़ते वक्त स्कूल को ही दान कर देते हैं। उनका मानना है कि यह पैसा वापस करना और इस पर ब्याज का हिसाब लगाना अनावश्यक कागजी कार्रवाई है।

सरकार ने कहा है कि माध्यमिक स्तर तक विज्ञान या कंप्यूटर फीस छात्र से नहीं लेनी चाहिए। लेकिन श्रीमती बख्शी, श्रीमती चोना और श्रीमती राय का मानना है कि विज्ञान और कंप्यूटर को समुचित ढंग से पढ़ाने के लिए स्कूलों के पास छात्रों से अतिरिक्त शुल्क लेने के अलावा कोई चारा नहीं है। विज्ञान प्रयोगशालाएं और कंप्यूटर विभाग बनाना खर्चीला होता है और फीस से एकत्र किये गये पैसे से इनका खर्च नहीं उठाया जा सकता।

दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व डीन ऑफ कॉलेजेस तथा कई पब्लिक स्कूलों के शिक्षा सलाहकार, मोहिन्दर सिंह का कहना है कि वसंत वैली और जी. डी. गोयनका फाइव स्टार स्कूल हैं, जो बच्चों को जिन्दगी की मुश्किलें उठाने के लिए तैयार नहीं करते। इन स्कूलों के बच्चे अपने शिक्षकों के वेतन के लिए पैसा देते हैं और एक कल्याणकारी स्कूल में ऐसा नहीं होना चाहिए।

श्री सिंह का कहना है कि कुछ मामलों में राज्य को हस्तक्षेप करने का हक है, जैसे कि अध्यापकों की सेवा शर्तें। हालांकि प्राइवेट स्कूल स्वायत्त हैं, लेकिन एक निश्चित तिथि तक उन्हें शिक्षा निदेशालय को यह सूचित करना होता है कि वे शुल्क में कितनी वृद्धि करना चाहते हैं। यदि निदेशालय की ओर से आपत्ति नहीं की जाती तो वे नया शुल्क लागू कर सकते हैं।

श्री सिंह का कहना है कि शिक्षा निदेशालय कुछ वर्षों से ज्यादा तानाशाह हो गया है। शिक्षा अधिनियम के अनुसार उसमें एक सक्रिय सलाहकार समिति होनी चाहिए।

श्रीमती चोना कहती हैं कि दिल्ली स्कूली शिक्षा अधिनियम में गैर अनुदान प्राप्त स्कूलों में शुल्क के प्रारूप का कोई संदर्भ नहीं है। स्कूल के वार्षिक बजट को अंतिम रूप देने से पहले, स्कूल की वित्तीय समिति शुल्क की समीक्षा करती है। अगर उसे लगता है कि शुल्क में वृद्धि होनी चाहिए तो वह उसे पेरेंट-टीचर एसोसिएशन के पास भेजती है और फिर शिक्षा निदेशालय को भेज देती है। हर स्कूल की प्रबंध समिति में राज्य सरकार के दो प्रतिनिधि होते हैं। श्रीमती चोना का मानना है कि अधिनियम में केवल यह व्यवस्था की गयी है कि सरकार को फीस बढ़ाने के बारे में 'सूचित' किया जाये। बहरहाल, आर. के. पुरम के स्कूल को हाल ही में काफी परेशानी उठानी पड़ी थी। निदेशालय की एक टीम ने स्कूल के खातों की कड़ी जांच-पड़ताल की लेकिन इसका वास्तविक कारण फीस में बढ़ोत्तरी या वित्तीय अनियमितताएं नहीं, बल्कि एक राज्यमंत्री के संबंधियों को स्कूल में दाखिला न देना था।

श्रीमती चोना का कहना है कि अब समय आ गया है कि सही स्कूलों और शिक्षा की दुकानों के बीच अंतर स्पष्ट करने के लिए स्कूलों को ग्रेड दे दिये जाएं। उनके स्कूल में छह प्रयोगशालाएं हैं, जिनमें एक शोध और विकास प्रयोगशाला, एक गणित प्रयोगशाला और एक भाषा प्रयोगशाला भी शामिल है। लेकिन राज्य सरकार के बाबू का सवाल था कि इतनी सारी प्रयोगशालाओं की क्या जरूरत है।

निजी स्कूलों में अध्यापकों की जवाबदेही होती है। लेकिन सरकारी स्कूलों में कोई जवाबदेही नहीं होती। हालांकि सरकार का सरकारी स्कूलों पर पूरा नियंत्रण होता है, लेकिन फिर भी वह गुणवत्ता सुनिश्चित नहीं कर पायी है। निजी स्कूल चलाने वालों का सवाल है कि "हमारे पास गुणवत्ता है, फिर क्यों हम पर नियंत्रण रखने की कोशिश की जाती है।"

□ उषा राय

समझौता हो गया था— यह समझौता करके बुलाया । हर प्रकार का दबाव डाला । 9 दिन के सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव 242 में कहा गया है कि

सिर्फ सलमान और सैफ ही नहीं

वन्य जीवों का शिकार करने वाले और भी हैं

पश्चिमी राजस्थान के वन्य क्षेत्र में संरक्षित वन्य जीवों के शिकार में पकड़े गए फिल्म कलाकार सलमान खान जहां मुकदमे का सामना कर रहे हैं, वहीं ऐसे अनेक मशहूर और रईस लोग भी हैं जो अभी भी इस तरह के शिकार को मर्दानगी का खेल समझते हैं और मुकदमे व सजा से भी बच निकलते हैं । ज्यादा से ज्यादा कुछ दिनों तक उन्हें प्रेस का सामना करना पड़ता है और उनके अहम् पर मामूली सा असर पड़ता है । कुछ वर्ष पहले कॉरबेट राष्ट्रीय उद्यान में थापर बंधुओं के हेलीकाप्टर के दुर्घटनावश गिर जाने की घटना को ही लीजिए । इस उद्यान के निदेशक ने उनके खिलाफ मुकदमा दायर करने की अनेक कोशिशें कीं, जिसमें कुछ वन्य जीव समर्थकों ने उनका साथ भी दिया और ये कहानी राष्ट्रीय दैनिकों के प्रथम पृष्ठों पर भी कुछ दिनों तक छायी रही थी । लेकिन शक्तिशाली और प्रभावशाली होने के कारण थापर बंधुओं पर उसका ज्यादा असर नहीं पड़ा । यहां तक कि स्थानीय प्रशासन के जो अधिकारी उन पर मुकदमा दायर करने वाले थे, उनमें से ही दो उस समाचारपत्र के संपादक के कार्यालय तक पहुंच गए जो इस कहानी को काफी उछाल रहा था ।

थापर ने जो उस समय सलमान खान की तरह काफी युवा थे, दावा किया था कि वे प्रकृति प्रेमी हैं । वास्तव में कॉरबेट से काफी निकट तराई क्षेत्र में उनका एक फार्महाउस भी है जहां आने वाले वन्य प्राणियों की देखरेख की जाती है । धीरे-धीरे ये कहानी समाचारपत्रों के पृष्ठों और लोगों की याददास्त से बाहर हो गई । उस समय बिश्नोई जैसे प्रतिबद्ध संरक्षणकर्ता नहीं थे और 'लीगल एक्शन फॉर वाइल्ड लाइफ एंड एनवायरमेंट (लॉ-ई)' की तरह प्रतिबद्ध वकीलों की कोई टीम भी नहीं थी जो अब सलमान खान के मामले में शामिल है, न्याय दिलाने के लिए ।

कुछ ही समय बाद इस प्रसिद्ध परिवार के दूसरे सदस्य भी मेरठ के निकट हस्तिनापुर वन्य जीव क्षेत्र में शिकार करते पकड़े गए थे । उनकी गाड़ियां, शिकार हुए जानवरों की खाल तथा अवशेष जब्त कर लिए गए थे, लेकिन पहुंच होने के कारण इस मामले ने भी ज्यादा तूल नहीं पकड़ा । उनमें से एक तो अब दक्षिण अफ्रीका शिकार के लिए जाते हैं जहां ये वैध हैं और अनेक इनामों के साथ वापस लौटते हैं । उन्होंने एक वन्य जीव संरक्षण संस्था भी खोल रखी है और आम जनता की नजरों में वे एक वन्य जीव प्रेमी हैं ।

संजय दत्त को भी शिकार पसंद है और मुम्बई के बोरीवली राष्ट्रीय उद्यान में शिकार करने के अनेक किस्से हैं, लेकिन वे कभी पकड़े नहीं गए । आरोप है कि उन्हें अपने शिकार की खाल रखने का शौक है । जब वे काफी छोटे थे तब वे अलीगढ़ के एक नवाब के यहां ठहरे थे और कथित रूप से अतरौली में काले मृग को मारा था । चूंकि वह क्षेत्र वन्य विभाग के अंतर्गत नहीं आता, इसलिए उन्हें पकड़ने के लिए वहां कोई नहीं था । शिवसेना प्रमुख बाल ठाकरे के एक रिश्तेदार पर भी बोरीवली राष्ट्रीय उद्यान में शिकार करने का आरोप है लेकिन उनके खिलाफ मुकदमा दायर करने की किसी की हिम्मत नहीं है ।

जोधपुर के हाल के हादसे में सलमान खान के साथ सैफ खान भी शामिल हैं । वास्तव में ये कलाकार कथित रूप से 8 से 10 दिनों तक उस क्षेत्र में शिकार करते रहे लेकिन बिश्नोई इलाके में शिकार करने पर ही उन्हें पकड़ा गया । कुछ महीनों पहले नवाब पटौदी और शर्मिला टैगोर भी कश्मीर घाटी में पक्षियों के शिकार करने गए अभियान दल के सदस्यों में से थे । हालांकि ये एक अनुज्ञप्ति प्राप्त अभियान था, जिसकी सफाई फारूक अब्दुल्ला ने दे भी दी थी ।

लेकिन संभवतः सबसे भीषण मामला तो 1982 में आधा दर्जन नौकरशाहों और उनके परिवार के सदस्यों द्वारा कॉरबेट राष्ट्रीय उद्यान में चीतल के शिकार की घटना है । कॉरबेट के वार्डन ने इस घटना के सिलसिले में जिन लोगों को पकड़ा था, उनमें मुरादाबाद के आयुक्त और उनकी पत्नी, बिजनौर के एस.पी. और जिला मजिस्ट्रेट, नगीना के एस.डी.एम. और कालागढ़ के एस.एच.ओ. शामिल थे । यह मामला अदालतों में चल रहा है और अभी तक सिंचाई विभाग के एक मोटरबोट चालक लाला राम की ही पेशी हुई है, जिसकी पिछले साल मृत्यु हो गई । अब जिम्मेदारी उनके सहायक पर आ गई है जो इस मामले में सह-अभियुक्त हैं ।

मिजोरम में मुख्यमंत्री के लड़के द्वारा दी गई एक पार्टी में मीट (मांस) की कमी पड़ गई । वह सीधा चिड़ियाघर गया और अपने भोजन के लिए एक हिरण उठा लाया । इस घटना से तब पर्यावरण और वन मंत्री श्रीमती मेनका गांधी काफी नाराज हुई थीं । लेकिन केंद्र-राज्य के बीच दरार के डर से उन्हें शासित पार्टी ने रोक दिया था भारत के सबसे बदनाम शिकारी संसार चंद्र को लगभग जानवरों की खालों के साथ अनेक बार पकड़ा गया, लेकिन उसे सिर्फ एक ही बार सजा हुई और वह कुछ ही दिनों तक जेल में रहा । लॉ-ई की स्थापना के समय से ही इससे जुड़े रहे महेंद्र व्यास खत्म हो रहे वन्य जीवों के प्रति काफी चिंतित हैं । उनके मुताबिक वनों के विध्वंस के लिए सरकार सबसे ज्यादा जिम्मेदार है । कर्नाटक के पश्चिमी घाट में लगभग 3 लाख हेक्टेयर वन गायब हो चुके हैं । देश का तीस प्रतिशत वन क्षेत्र अतिक्रमण का शिकार है । यदि वन नहीं होंगे तो वन्य जीव भी नहीं होंगे ।

वन्य जीव संरक्षण कानून के तहत कम से कम एक साल और ज्यादा से ज्यादा छह वर्ष की सजा निर्धारित है । सजा पाने वाले सिर्फ जुर्माना भर कर बच नहीं सकते । हालांकि शिकार के लिए बंदूक उठाने वाले बहुत से लोग इस बात से अनजान ही हैं ।

वे यह भी नहीं जानते कि पकड़े जाने पर वे अपनी बंदूक एवं गाड़ी से हाथ धो सकते हैं क्योंकि ये दोनों ही सरकारी सम्पत्ति हो जाती है । यद्यपि जोधपुर के मुकदमे को राजनीतिक और सांप्रदायिक रंग देने की कोशिश की गई थी, लेकिन जोधपुर के लोगों ने ग्लैमर की दुनिया वालों के इस कृत्य को काफी गंभीर अपराध माना । जोधपुर के जाट और बिश्नोई प्रकृति और वन्यजीव प्रेमी हैं । उनमें रोज सुबह पक्षियों और चींटियों को खाना देने की परम्परा है । वहां मोर, पक्षियों और मृगों को खुले घूमते देखा जा सकता है । पक्षियों को घोंसलों की सुविधा दी जाती है और गाय तथा कुत्तों को खिलाने का भी बंदोबस्त किया जाता है । यहां तक कि तालाबों में मछलियों को भी खाना दिया जाता है, अतः उनका गुस्सा और 'जीव हत्यारों को फांसी दो' का नारा जेल और अदालत के बाहर अक्सर सुना जाता था ।

पश्चिमी राजस्थान के इन इलाकों में सिर्फ राजपूत, मुस्लिम और खानाबदोश आदिवासी ही शिकार करते हैं । अब बहुत से शिकारी दूसरे राज्यों से आते हैं । वास्तव में अब देखना यह है कि इस मामले के बाद राज्य वन्यजीव संरक्षण कानून-1972 को लागू करने में समर्थ हो पाता है कि नहीं ।

गंगानगर से बाड़मेर तक काले मृग और चिंकारा देखे जा सकते हैं । ये गांवों के भीतर और खेतों में हर कहीं रहते हैं और वन्य विभाग के लिए यहां तक गश्त करना बहुत मुश्किल है ।

हालांकि पिछले वर्ष थार क्षेत्र में वन्य जीव का अध्ययन करने वाले 'बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी' के निदेशक श्री असद आर. रहमानी का कहना है कि मुस्लिम और राजपूत इलाकों में दिल्ली, मुम्बई, चंडीगढ़ और अन्य राज्यों से लोग सिर्फ काले मृग और चिंकारा का शिकार करने ही नहीं आते बल्कि वे तीतर और सोन चिड़िया का भी शिकार करते हैं । एक महीने में ही उन्होंने शिकार चोरी की तीन वारदातें देखी हैं । इस अध्ययन में गला कटे चिंकारा के और बुरी तरह से मारी गई शानदार तीतर के भी चित्र लिए गए हैं । अध्ययन के मुताबिक इस इलाके के गाइड, ट्रेवल एजेंट और होटल मालिक भी शिकार चोरी और वन्य जीवों के शिकार में सहयोग करते हैं ।

श्री रहमानी कहते हैं कि इतने विशाल थार रेगिस्तान में शिकार चोरी पर प्रतिबंध लगाने में वन विभाग पूरी तरह असमर्थ है, क्योंकि एक तो इन्हें कोई सुविधा प्राप्त नहीं है और दूसरे 208.751 स्क्वायर किलोमीटर में फैले थार रेगिस्तान की देखरेख के लिए सिर्फ दो वन्यजीव वॉर्डन हैं— एक बीकानेर में तो दूसरे जोधपुर में । इन दोनों के पास स्थानीय चिड़ियाघरों का अतिरिक्त भार भी है अतः शिकार चोरों के पकड़ने का समय उन्हें मिल ही नहीं पाता है । यदा-कदा कुछ आदिवासी शिकारी पकड़े जाते हैं लेकिन रईस और प्रसिद्ध तथा प्रभावशाली शिकारी जो गाड़ियों में घूमते हैं, कभी-कभार ही पकड़ में आते हैं । यदि उन्हें पकड़ा भी जाता है तो वह मामला राजनीतिक और प्रशासनिक दबावों में दब जाता है ।

उनके मुताबिक वन्य जीव वॉर्डनों को प्रायः पुरानी डीजल जीप दी जाती है जिसका वार्षिक ईंधन कोटा तीन या चार माह में ही समाप्त हो जाता है । यदि यह गाड़ी खराब हो जाती है तो महीनों तक ऐसे ही पड़ी रहती है । 1994 में वे जब बीकानेर चिड़ियाघर पहुंचे तो उन्हें बताया गया कि शिकार चोरों को पकड़ने वाली गाड़ी पिछले सात सालों से खराब पड़ी है । जबकि इन शिकार चोरों के पास अत्याधुनिक सुविधाओं से लैस गाड़ियां मौजूद हैं । सलमान खान के मामले से इस तरह के सभी शिकारियों को एक सबक मिल गया है ।

● उषा राय

NAME OF PUBLICATION
THE HINDUSTAN

PLACE OF PUBLICATION
NEW DELHI

DATE OF PUBLICATION
25 DEC 1998

मुश्किल हो रहा है वन्य जीव संरक्षण

● उषा राय

वन्य जीव संरक्षक जब बाघों की रक्षा की बात करते हैं तो दरअसल वे सम्पूर्ण वन्य प्राणी की रक्षा की बातें करते हैं। इसका अर्थ है कि वे नेशनल पार्क और अभयारण्य के बड़े-छोटे जानवरों की मनुष्यों से रक्षा की बात करते हैं। लेकिन दुधवा सुरक्षित वन और कटरनियाघाट अभयारण्य के जंगलों में, जिनकी सीमायें नेपाल को छूती हैं, वहां बाघों और हिरणों को बचाना दिन-ब-दिन मुश्किल होता जा रहा है। ये मृग बाघों के प्रिय भोजन में शुमार हैं।

इन दोनों सुरक्षित वनों में हिरणों को बचाना एक दूभर कार्य हो गया है। काशीपुर अभयारण्य, जो कि दुधवा का ही एक हिस्सा है यहां के जादी ताल के आसपास झबरीले प्रजाति के सात सौ हिरणों का वास है। पूरे देश में इस प्रजाति के चार हजार हिरण हैं। इस वर्ष जुलाई में जिला कलेक्टर ने जादी ताल से सटे 36 से 50 एकड़ जमीन का पट्टा भूमिहीनों को बांट दिया है। जिला कलेक्टर को शायद वन्य प्राणी संरक्षण के बारे में कुछ पता नहीं है। यहां तक कि फील्ड निदेशक रूपक डे से सलाह तक नहीं ली गई।

कटरनियाघाट में उस प्रजाति के हिरणों की संख्या घटी है। इसका एक बड़ा कारण केन्द्रीय राज्य बीज फार्म का निर्माण है। हिरणों के चारागाह पर बीज फार्म का विकास किया गया है। गांव वाले बताते हैं कि भौलिया-भागर झील के आसपास अभी भी 140 से 150 हिरण मौजूद हैं। ऐसा वे इसलिए कह रहे हैं कि इस इलाके में बाघों के पंजे की छाप भरी पड़ी है। मालूम हो कि बाघ वहीं होते हैं जहां उनका प्रिय भोजन उपलब्ध हो।

मस्ती के महीनों में यहां दलदल और मैदान युद्ध क्षेत्र बन जाते हैं। कभी-कभी यह युद्ध इतना भयानक होता है कि बहुत सारे हिरण अपनी बारासिंघ ही खो बैठते हैं। आप जादी ताल के आसपास 180 से 400 तक हिरण देख कर भ्रमित हो सकते हैं कि यह भारत है अथवा पूर्व अफ्रीका का कोई सफारी।

श्री डे बताते हैं कि उन्हें जमीन बांटने का पता पट्टा बांट देने के बाद चला। अब पूरा किशनपुर गांव भूमिहीनों को जमीन बांटे जाने की तरफदारी कर रहा है। गांव प्रधान के पुत्र नरेश चन्द्र और अशोक का कहना है कि अगर भूमिहीनों को कहीं और जमीन देने का प्रयास किया गया तो पूरा गांव एक हजार एकड़ भूमि पर कब्जा कर लेगा और उसे पुनर्वास केन्द्र बना दिया जायेगा।

वन्य प्राणियों के करीब रहना किशनपुर वालों के लिये मुश्किल हो रहा है। अपनी फसल की रक्षा के लिए वे सख्त पहरेदारी करते हैं। ईख की फसल को खासतौर से जानवरों से बचाना होता है।

इसके अलावा वन विभाग के अधिकारों से उनकी नोंकझोक होती रहती है। इस महत्वपूर्ण वन की रक्षा के लिए वन अधिकारी ज्यादा चौकस हैं। जंगल का फाटक शाम छः बजे बन्द हो जाता है। उसके अलावा कोई भी ट्रैक्टर जंगल के रास्ते से गुजरता है तो उसे छः रुपये लेवी के तौर पर देना होता है।

गांव वालों को इन झबरीले हिरणों से कोई प्रेम नहीं है। यह उनके लिये दूसरे जानवरों की तरह है, जो उनकी फसल बरबाद करते हैं और उनके विकास में बाधा खड़ी करते हैं। वन अधिकारी गांव वालों पर जानवरों को मारने का आरोप लगाते हैं। लेकिन अब उन्हें उस जमीन पर कानूनी हक मिल गया है।

कटरनिया घाट अभयारण्य में 37 बाघ, पांच प्रजाति के हिरण-चीतल, झबरे हिरण, सांभर, हॉग हिरण तथा बर्किंग हिरणों का निवास है। ये सभी एक साथ किसी दूसरे अभयारण्य में नहीं पाये जाते। इस क्षेत्र में, वन्य प्राणियों के फलने-फूलने की प्रचुर संभावनायें हैं। सत्तर किलोमीटर के क्षेत्र में दक्षिण से उत्तर की ओर फैला यह बेहद संकरा जंगल है। उसकी चौड़ाई तीन से आठ किलोमीटर से लेकर 20 से 24 किलोमीटर तक फैली है। इस जंगल से गरवा नदी बहती है तथा इसके दोनों पाटों पर घने जंगल फैले हैं। महादेव ताल, कई पक्षियों और पशुओं का निवास है।

सच तो यह है कि नेपाल से तीन गैंडे और चार हाथियों ने आ कर इस जंगल में शरण ली है। गरवा नदी से सटे छोटी बेली और बड़ी बेली में उन्हों शरण ली है। नरकुल घास में वे छिपे रहते हैं, पर सुबह-शाम उन्हें नदी के किनारे देखा जा सकता है। महादेव ताल में लुप्त प्राय सारस कीचड़ से कीड़े तलाशते मिल जायेंगे। गरवा नदी में नौकायात्रा वन संरक्षकों के लिये आह्लाद भरने वाला होता है। यहां डालफिन के करतब, घड़ियाल और मगरमच्छ को नदी पर बने छोटे द्वीपों पर देखा जा सकता है।

वन्य जीवों के इस स्वर्ग में केन्द्रीय बीज फार्म द्वारा 3842 हेक्टेयर अधिगृहित की गई भूमि समस्यायें पैदा कर रही है। हालांकि यह जमीन सत्तर के दशक में केन्द्र राज्य फार्म निगम को दी गई थी लेकिन, आज तक निगम ने न तो जमीन के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किये, न ही लीज का बकाया 180.43 लाख रुपये ही अदा किये। इस बीच इस वर्ष की शुरूआत में राज्य सरकार के आदेश पर वन विभाग ने 1500 हेक्टेयर जमीन पर कब्जा करना शुरू कर दिया। लेकिन जमीन खाली कराने का काम लखनऊ उच्च न्यायालय के एक आदेश के बाद बीच में ही रोकना पड़ा।

कटरनिया घाट के डी. एफ. ओ. श्री वी. के. सिन्हा का कहना है कि बीज फार्म ने वन्य जीवन में बाधा डाली है। उन्होंने अभयारण्य का महत्वपूर्ण अंश ही हथिया लिया है। बीज निगम के कर्मचारी अब अपने फार्म से ही जानवरों का शिकार करते हैं और बहुमूल्य पेड़ काटते हैं। मछली और घास ठेके पर उठाते हैं। वन अधिकारियों ने बीज फार्म के कर्मचारियों के खिलाफ ऐसे कई मामले दर्ज कराये हैं, उसमें एक बाघ का शिकार भी शामिल है।

राज्य बीज फार्म के निदेशक डी. आर. कटारिया इन आरोपों का खंडन करते हैं कि उनके कर्मचारियों ने बाघ अथवा किसी अन्य जानवर का शिकार किया है। उनका कहना है कि इस फार्म से पांच हजार लोगों को रोजगार मिला है तथा धान, गेहूं, राजमा और तिलहन के उत्तम किस्म के बीज किसानों को पहुंचाए गए हैं। जबकि श्री सिन्हा का कहना है कि भागुलिया भागर के दलदल, झबरे हिरणों के लिये स्वर्ग है, लेकिन बीज फार्म से इन्हें खतरा हो गया है। दूसरी तरफ श्री कटारिया का कहना है कि इस इलाके में कोई झबरा हिरण नहीं है। वे स्वीकार करते हैं कि यहां नील गाय, भालू और आधे दर्जन बाघ, जिनमें दो बच्चे भी हैं, के साथ जंगल में मौजूद हैं।

वन विभाग के साथ झमेले के कारण इस वर्ष बीज फार्म को तीन करोड़ का घाटा उठाना पड़ा। श्री कटारिया का कहना है कि अगर केन्द्र और राज्य दोनों सरकारों की रजामंदी हो तो वे इस फार्म को कहीं और ले जाने को तैयार हैं। इधर वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड भी इस पर चिन्ता जता चुका है। उसका एकमात्र लक्ष्य है—बाघों का संरक्षण। लेकिन बिना बारासिंघे को बचाये, बाघ बच पायेंगे क्या ?

कैसे रुकेगी आबादी की बाढ़

बढ़ती जनसंख्या का सबसे बड़ा कारण माना जा रहा है—गलत नीतियां। इन गलत नीतियों के चलते न तो शिक्षा का प्रसार सही ढंग से हो पाया है और न ही परिवार नियोजन कार्यक्रम कारगर साबित हुए हैं। जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों से भी लोग अनभिज्ञ हैं। फिर कैसे रुकेगी आबादी-वृद्धि की बाढ़? आशा राय प्रस्तुत कर रही हैं संभावित समाधान।

कुछ महीने पहले उत्तर प्रदेश के रायबरेली-प्रतापगढ़-सुल्तानपुर क्षेत्र में मानवभक्षी भेड़ियों ने साठ से अधिक बच्चों को अपना शिकार बनाया और चालीस अन्य को घायल कर दिया। इस घटना के पीछे पारिस्थितिकी के अलावा कई और पहलू थे, जिन पर गौर करना जरूरी है। जैसे—जंगलों का विनाश और जंगली जानवरों के लिए शिकार का अभाव। इस क्षेत्र में आबादी लगातार बढ़ रही है। यहां छोटे-छोटे बच्चे बिना किसी की निगरानी के घूमते हैं। भूखे भेड़ियों के लिए इन छोटे बच्चों को शिकार बनाना आसान है। इन हादसों के बाद किसी ने भी इस पहलू पर गौर नहीं किया कि यहां परिवार कल्याण गतिविधियां पूरी तरह ठप हैं।

यह एक दुःखद तथ्य है कि हमारे देश में आजादी के पचास साल बाद भी कोई स्पष्ट जनसंख्या नीति नहीं है। जनसंख्या नियंत्रण संबंधी स्वामीनाथन रिपोर्ट फाइलों में बंद है। हालांकि, स्वास्थ्य मंत्रालय के नए मसौदे में उसके कुछ सुझावों को शामिल किया गया है, जिसे मंत्रिमंडल की स्वीकृति मिलनी बाकी है।

इस बीच, हमारी आबादी के आंकड़े तेजी से बढ़ रहे हैं। दस साल पहले हम यह रोना रो रहे थे कि हर साल ऑस्ट्रेलिया की पूरी आबादी जितनी हमारी आबादी बढ़ जाती है। आज हम उन आंकड़ों को भी पार कर चुके हैं और न्यूजीलैंड की आबादी के बराबर लोग हर साल हमारी आबादी के आंकड़े में जुड़ रहे हैं।

पिछले एक साल में सरकार में अहम स्थान रखने वाले किसी भी व्यक्ति की ओर से एक भी ऐसा बयान नहीं आया है, जिसमें आबादी के बारे में किसी ठोस नीति की घोषणा की गई हो। इस महत्वपूर्ण मंत्रालय का हाल यह है कि पिछले तीन सालों में पांच स्वास्थ्य एवं कल्याण मंत्री बदले जा चुके हैं। दिसंबर, 1994 में जब शंकरानंद इस मंत्रालय से निकले, तो राज्य मंत्री सिल्वेरा छह महीने तक मंत्रालय चलाते रहे। फिर ए.आर. अंतुले एक साल के लिए आए। वे फाइलों को दबाकर बैठे रहे और कंडोम की खरीद टालते रहे। भाजपा के तेरह दिन के शासन के स्वास्थ्य मंत्री ने इस ओर कुछ ठोस करने का संकल्प तो दिखाया, लेकिन वह ज्यादा दिन टिक नहीं पाए। फिर एक साल तक सलीम शेरवानी ने इस मंत्रालय का कार्यभार संभाला। इस युवा मंत्री ने अपने मंत्रालय का काम तो ठीक-ठाक चलाया, लेकिन जनसंख्या नीति पर उन्होंने भी कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखाई। फिर उन्हें विदेश मंत्रालय में भेज दिया गया और उनकी जगह आईं श्रीमती रेणुका चौधरी।

परिवार कल्याण मंत्रालय में पिछले तीन साल में तीन सचिव बदले जा चुके हैं। मंत्रालयों में नौकरशाह और सचिव कुछ हद तक मंत्रियों की राजनीतिक कटिबद्धता के अभाव के कारण होने वाली कमी को पूरा करने में योगदान दे सकते हैं, लेकिन उन्हें किसी भी पद पर ज्यादा दिन रहने नहीं दिया जाता।

इस तरह, किसी ठोस जनसंख्या नीति का अभाव और मंत्रियों के बार-बार विभाग बदलने के कारण विकास के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र की एक तो अनदेखी की जा रही है, दूसरे, इसे अनुदानकर्ताओं को अपने कब्जे में लेने का अवसर मिल गया है। 1992-93 तक यूनीसेफ और विश्व बैंक के अनुदान कार्यक्रमों का नारा था—सुरक्षित मातृत्व। फिर जनसंख्या और विकास संबंधी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में ध्यान जनसंख्या नीति से प्रजनन स्वास्थ्य देखभाल की ओर केंद्रित हो गया। अब ज्यादातर अनुदान एजेंसियां प्रजनन-स्वास्थ्य देखभाल के लिए ही पैसे दे रही हैं। नौवीं योजना में विदेशों से 1000 मिलियन डॉलर या 4000 करोड़ रुपये विदेशी अनुदान के रूप में मिलने की आशा है। आठवीं योजना में यह राशि 600 मिलियन डॉलर थी।

इस तरह विश्व बैंक, यूरोपीय संघ, यूनीसेफ, यूएनएफपीए और डेनिडा जैसी एजेंसियां अब भारत के प्रजनन-स्वास्थ्य के लिए पैसा दे रही हैं। इसके साथ-साथ उत्तर प्रदेश में भी अनुदान के पैसे दिए जा रहे हैं। इसके बावजूद यहां प्रजनन या स्वास्थ्य की बेहतरी का कोई चिह्न नहीं दिख रहा है। दरअसल, संयुक्त राष्ट्र ने अपने घोषणा-पत्र के मसौदे को बदल दिया है। इसमें सभी वर्तमान कार्यक्रम शामिल हैं, यानी सुरक्षित मातृत्व, टीकाकरण, प्रजनन, अंग-संक्रमण और यौन-रोग। इसके अंतर्गत गर्भपात कराने की सुविधा भी शामिल है।

इस प्रकार अपनी किसी ठोस नीति के अभाव में हमें अनुदानकर्ताओं पर यह जानने के लिए निर्भर करना पड़ता है कि हमें क्या करना है। अनुदान एजेंसियों के कार्यक्रम और जनसंख्या नियंत्रण के लक्ष्य से हटने का नतीजा हमारे लिए दो पाटों के बीच पिसने जैसा हो सकता है। उत्तर प्रदेश, बिहार और असम में ऐसा हो भी रहा है, जहां जनसंख्या निरोधी उपायों को अपनाने में कमी आई है।

हालांकि, भारतीय कार्यक्रम को लक्ष्य मुक्त करने की क्षमता पर किसी को भी संदेह नहीं है। लक्ष्य मुक्त कार्यक्रम में महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल की जिम्मेदारी नर्स के कंधों पर आ जाती है। उसे उस कार्यक्रम को चलाने वाला प्रमुख अंग मान लिया जाता है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि उसके कंधों पर पहले से ही काफी जिम्मेदारी है। पुरुष नर्सों या कार्यकर्ताओं के अभाव में अंततः वह मलेरिया, टीबी और अन्य मौसमी बीमारियों के पीड़ितों की देखभाल में ही फंसी रहती हैं। यह भी देखा गया है कि उसे पुरुषों तक अपना संदेश पहुंचाने में मुश्किलें आती हैं, जो आज भी यह तय करते हैं कि परिवार कितना बड़ा होगा।

जनसंख्या और स्वास्थ्य मामलों से सक्रिय रूप से जुड़े एक स्वयंसेवी संगठन को यह जानकर धक्का लगा कि शाहपुर (उत्तर प्रदेश) के विकास चार्ट में जिन प्राथमिकताओं का जिक्र है, उनमें टीकाकरण और परिवार नियोजन का उल्लेख तक नहीं है। छोटे परिवारों के सुख और गर्भ निरोधक गोलियों तथा कंडोम के टीवी पर आने वाले विज्ञापन लुप्त हो गए हैं।

हालांकि, सरकार कंडोम के इस्तेमाल और नसबंदी को बढ़ावा देकर परिवार नियोजन का लक्ष्य महिला से हटाकर पुरुष पर केंद्रित करना चाहती है, लेकिन हकीकत यह है कि आज भी इस कार्यक्रम का बोझ महिलाएं ही झेल रही हैं। दुर्भाग्य की बात यह है कि महिलाओं के लिए गर्भनिरोधक उपायों में ज्यादा विकल्प नहीं है। सिर्फ एक प्रकार की गोलियां हैं और कॉपर-टी।

हालांकि, आदिवासी और गांवों के लोग गर्भनिरोधी उपायों के लिए जड़ी-बूटियां इस्तेमाल कर रहे हैं, लेकिन इनकी वैज्ञानिक जांच कर इन्हें बाजार में उपलब्ध कराने के प्रति कोई खास उत्साह सरकार नहीं दिखा रही है। अपनी जनसंख्या और स्वास्थ्य प्राथमिकताओं को तय करने के बजाय हम अनुदान एजेंसियों के कार्यक्रमों को हाथोहाथ ले रहे हैं।

यद्यपि हमारी जनसंख्या दर 2.14 से घटकर 1.9 प्रतिशत हो गई है, लेकिन हमारी आबादी इतनी विशाल है कि हम शीघ्र ही आबादी के मामले में सबसे अधिक जनसंख्या वाले चीन को भी पीछे छोड़ देंगे। साक्षरता के लक्ष्यों की तरह हम आबादी और सबके लिए स्वास्थ्य के अपने लक्ष्यों को भी लगातार पीछे धकेल रहे हैं। भारत को सन् 2000 तक शुद्ध प्रजनन दर एक और दम्पति सुरक्षा दर साठ हासिल करनी थी, लेकिन चुपके से इस लक्ष्य को 2016 तक खिसका दिया गया है।

(उन्नति)

अशिक्षित और गरीब दम्पति : परिवार नियोजन से कोसों दूर

बिना डाइटिंग घटाएं वजन

यदि कोई यह कहे कि खूब खाओ और वजन भी घटाओ, तो बात आश्चर्यजनक प्रतीत होगी, पर यदि इसी के साथ एक छोटा-सा निर्देश वाक्य भी जोड़ दिया जाए कि 'जमकर खेलो भी' तो बुद्धि विश्वास करने लगेगी कि बात कुछ जम रही है। क्योंकि खाने व खेलने का मेल ही वजन को न बढ़ने देने का कारण है। स्वस्थ व सुगठित रहने का कारण भूखे रहना, कम खाना कदापि नहीं है, बल्कि पेट भर खाना और रोज व्यायाम करना है।

अनेक अध्ययनों से यह पता चलता है कि मोटे लोग प्रायः उतना नहीं खाते, जितना कि पतले लोग खाते हैं, पर लगता ऐसा है कि मोटे लोग ज्यादा खाते होंगे, तभी वे चर्बीले व मोटे हैं। मोटे लोग पतलों से कम खाकर भी मोटे इसलिए होते हैं, क्योंकि वे सक्रिय नहीं होते। दुबले-पतले, पर सक्रिय लोग भारी-भरकम निष्क्रिय लोगों की अपेक्षा ज्यादा व जल्दी कैलोरी लेते हैं। पर चूंकि, उनकी शारीरिक गतिविधियां मोटे लोगों से बहुत ज्यादा होती है, अतः वे स्वस्थ व सुगठित बदन के स्वामी होते हैं। जबकि कम कैलोरी व कम सक्रियता वाला व्यक्ति मोटे व थुलथुल बदन वाला हो जाता है।

वस्तुतः जो लोग जितना ज्यादा व्यायाम, शारीरिक श्रम या दौड़-भाग करते हैं, वे उतनी ही ज्यादा कैलोरी लेते हैं व व्यायाम के कारण उनकी चर्बी उतनी ही कम होती जाती है। शरीर गठाव ले लेता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि जो ज्यादा दौड़ता है, घूमता है, वही ज्यादा खाता है और उसी के शरीर की चर्बी भी सबसे कम होती है। यानी, मोटापा घटाने का एक ही सटीक उपाय है—व्यायाम।

शरीर में कैलोरी (ऊर्जा) का प्रयोग दो तरह से होता है—भोजन का पचना, सांस लेना, दिल के धड़कने जैसे आवश्यक अंग संचालन के लिए जो ऊर्जा का प्रयोग होता है, उसे बीएमआर यानी 'बेसल मेटाबोलिक रेट', अर्थात आहार चयापचय दर कहलाता है। औसतन एक वयस्क व्यक्ति के बीएमआर को प्रतिदिन 1400 कैलोरी की जरूरत पड़ती है। दूसरी तरह की ऊर्जा का प्रयोग वह है, जो खड़े होने, चलने, दौड़ने जैसी अन्य शारीरिक गतिविधियों में होता है। बीएमआर के साथ मिलकर कैलोरियों की कुल संख्या का निश्चय होता है कि शरीर की गतिविधि की मात्रा और बीएमआर का योग कितना है। यह संख्या आहार द्वारा संतुलित होनी जरूरी है, ताकि वजन एक जैसा बना रहे।

एक निष्क्रिय व्यक्ति अपने बीएमआर में रोज सामान्य गतिविधियां करके 300-400 कैलोरियों की बढ़त ही कर सकता है, ताकि औसतन योग 1700-1800 बन सके, पर मैराथन दौड़ में हिस्सा लेने वाला खिलाड़ी, शारीरिक श्रम करने वाला मजदूर अपनी शारीरिक गतिविधियों को भी नजर में रखते हुए कैलोरी की संख्या खूब बढ़ा सकता है। इसका अर्थ हुआ, जितना ज्यादा शारीरिक श्रम उतना ही ज्यादा कैलोरी युक्त भोजन।

एक निष्क्रिय व्यक्ति अपने बीएमआर को बढ़ाने के लिए जो करता है, उससे उसकी चर्बी घटती है, पर यदि वह अपने बीएमआर को घटाने का यत्न करता है, तो उसका वजन बढ़ता है। व्यायाम या शारीरिक श्रम से बीएमआर बढ़ता है व कैलोरियां जल्दी व ज्यादा खपती हैं, वजन में उचित कमी आती है।

नियमित रूप से व्यायाम करने से न केवल वजन घटता है, बल्कि वजन पर बराबर नियंत्रण भी बना रहता है, पर केवल भूखे रहकर या कम खाकर वजन घटाने से शरीर में कमजोरी ही आती है और मांसपेशियां भी ढीली व कमजोर पड़ जाती हैं। यदि नियमित व्यायाम, स्विमिंग व शारीरिक श्रम किया जाए, तो मांसपेशियां सुडौल, पुष्ट व सुगठित होती हैं। उनमें मजबूती आती है। नियमित रूप से व्यायाम करने से हृदय भी अच्छी तरह काम करता है। शरीर स्वस्थ रहता है व [illegible] बढ़ जाती हैं।

नियमित व्यायाम का एक लाभ और है—इससे रक्त का स्तर (एचडीएल) यानी 'हाई डेंसिटी लिपोप्रोटीन' को ऊंचा उठाने में मदद मिलती है। यह एक अच्छा कोलेस्ट्रॉल है, जो हृदय रोग की रोकथाम करता है और खराब कोलेस्ट्रॉल का स्तर घटाता है। [illegible]

व्यायाम का एक लाभ और भी है—इससे हड्डियां भी [illegible] इससे हड्डी टूटने की घटनाओं की रोकथाम होती है।

शारीरिक गतिविधियों के बढ़ने से भोजन की मात्रा में भी वृद्धि होती है और शरीर को पोषक तत्व ज्यादा मिल पाते हैं। विटामिन व खनिज पर्याप्त मात्रा में पहुंचकर शरीर को पुष्ट व स्वस्थ बनाते हैं। यदि मोटापे से बचना हो, रक्तचाप व मधुमेह जैसी जानलेवा बीमारियों से खुद को बचाए रखना हो, तो रोज कम-से-कम दो मील तेज चाल चलना व घर के ज्यादा-से-ज्यादा शारीरिक काम खुद करना जरूरी है, ताकि आनंद से स्वस्थ जीवन जिया जा सके।

मंजु नागोरी

खबर-दर-खबर

प्रशंसनीय हौसला

वो जमाने हवा हुए, जब मां-बाप जैसे व्यक्ति से चाहें, अपनी बेटी ब्याह देते थे, भले ही वर आयु में बेटी से कई वर्ष ज्यादा हो या फिर किसी रूप में शारीरिक अक्षमता का शिकार हो। आज की लड़कियां इतनी हिम्मत रखती हैं कि ऐसे किसी बेमेल रिश्ते को अंतिम समय तक भी ठुकरा सकें। मथुरा जिले में एक लड़की ने ऐसा ही हौसला कर दिखाया।

घटना मथुरा से बाईस किलोमीटर दूर बलदेव कस्बे में हुई। बारात आने के बाद यह पता चलने पर कि वर की आयु दुल्हन से लगभग दोगुनी है, कन्या ने विवाह से इनकार कर दिया। कन्या द्वारा स्पष्ट इनकार के बाद बारात बैरंग वापस लौट गई। उसी समय दूसरा वर खोजकर कन्या का विवाह करा दिया गया। प्रशंसनीय यह रहा कि कन्या का यह हौसला देखकर उसकी छोटी बहन से विवाह करने के लिए भी एक युवक सामने आया और एक साथ दोनों बहनों का विवाह कर दिया गया। क्या और भी लड़कियां अपनी जिंदगी का निर्णय स्वयं लेने के अधिकार के पक्ष में बोलने का हौसला दिखाएंगी?

घातक हो सकते हैं फास्ट फूड

फास्ट-फूड के प्रति युवाओं में दीवानगी बढ़ती ही जा रही है। ये व्यंजन स्वाद में तो लजीज होते हैं, पर सेहत को कम नुकसान नहीं पहुंचाते। ज्यादा देर तक भूने या तले गए इन व्यंजनों के कारण ऑक्सीडाइज्ड कॉलेस्ट्रॉल की मात्रा शरीर में अधिक हो जाती है। इससे रक्तवाहिनियां बंद होकर हृदयाघात की संभावना काफी ज्यादा हो जाती है।

अब से पहले यह माना जाता था कि रक्त स्वतः वसा एकत्रित करने वाले कॉलेस्ट्रॉल को ऑक्सीडाइज्ड कर देता है, जिससे वसा जमने से बंद होने वाली रक्त वाहिनियां ठीक रहती हैं। लेकिन इस नए अध्ययन से पता चला है कि फास्ट फूड में पहले से ही ऑक्सीडाइज्ड कॉलेस्ट्रॉल होता है, जिनमें डिब्बा बंद तले-भुने खाद्य पदार्थ, मांस, अंडे और दुग्ध उत्पाद प्रमुख हैं। यह कॉलेस्ट्रॉल रक्त वाहिनियों में रक्तप्रवाह को रोक देता है, जिसके कारण हृदयाघात होने की संभावना बढ़ जाती है। अब ये आपके हाथ में है कि इतना कुछ जानने के बाद भी आप फास्ट फूड खाने का लोभ छोड़ पाती हैं या नहीं।

ममता!

मां की ममता एक मां से क्या कुछ नहीं करा सकती, यहां तक कि इसी ममता के कारण वह अपने बच्चे की हत्या भी कर सकती है। आश्चर्य हुआ न सुनकर! लेकिन यह वास्तविकता के धरातल पर सत्य साबित हुई घटना है। जापान में एक 96 वर्षीया महिला को तीन साल के कारावास की सजा सुनाई गई, क्योंकि उसने अपने 63 वर्षीय मानसिक रूप से असंतुलित बेटे की हत्या कर दी थी। तोमोहाशी की सेंट्रल अदालत ने इस महिला को किमोनो बेल्ट से अपने बेटे का गला घोंटकर मार डालने का दोषी ठहराया है।

चार बच्चों की मां यह महिला बीमार थी और अपने बेटे के भविष्य को लेकर बुरी तरह चिंतित थी। इस चिंता से मुक्ति का उसे एक ही उपाय नजर आया—बेटे की जीवन से मुक्ति। बेटे की हत्या के बाद इस महिला ने आत्महत्या का भी प्रयास किया। एक मां का यह कृत्य आपकी नजर में क्या है—ममता?

प्रखर

वैचारिकी

धार्मिक पुस्तकों का सच

स्त्रियों को आचार-विचार और व्यवहार संबंधी उपदेश देती जो पुस्तकें बाजार में उपलब्ध हैं, अधिकांश स्त्री के वजूद पर प्रहार ही करती हैं। महिलाओं को अत्याचार सहने को प्रेरित करती इन पुस्तकों का सच क्या है? कहीं यह महिलाओं को दबाए रखने की धार्मिक साजिश तो नहीं? इस विषय पर पाठिकाओं की प्रतिक्रिया आमंत्रित की गई थीं। प्रस्तुत है कुछ श्रेष्ठ विचार समेटे इस श्रृंखला की अंतिम कड़ी।

धार्मिक पुस्तकों का वास्तविक ज्ञान महिलाओं के लिए हितकारी ही है

धार्मिक ग्रंथों को ढाल बनाकर जो लोग नारी दमन की नीति पर चलते हैं और जो लोग धर्म के नाम पर इसका अनुसरण करते हैं, वास्तव में ये वे लोग हैं, जो या तो धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किए बिना सुनी-सुनाई बातों को मानकर नारी समाज को हेय-दृष्टि से देखते हैं या वे, जो धर्मग्रंथों को बहुत अधिक गहराई से पढ़कर उनमें से पुरुष समाज के अधिकारों का तो खूब ढिंढोरा पीटते हैं, परंतु स्त्री के अधिकारों की जो व्याख्या धर्मग्रंथों में की गई है, उसे या तो दबा देते हैं या बहुत दबे हुए शब्दों में सामने लाते हैं।

वास्तविकता तो यह है कि धर्म ग्रंथों का पालन करके ही स्त्री समाज अधिक सम्माननीय एवं सुरक्षित रह सकता है। पिछले हजारों वर्षों से बुद्धिजीवी जिस लक्ष्मण रेखा का बखान धर्म ग्रंथों में करते हैं, वही लक्ष्मण रेखा अगर आधुनिकता के नाम पर आज पार करने का प्रयास हम करेंगे, तो फिर हजारों राक्षस छद्म वेष में हमें लूटने को तत्पर मिलेंगे। शायद पिछले हजारों वर्षों में भी बुद्धिमान, बुद्धिजीवी एवं स्पष्टवादी लोग कम नहीं थे, मगर आधुनिकता के नाम पर नग्नता और अधिकारों के नाम पर आक्रमकता नारी समाज के लिए कभी भी हितकारी नहीं हो सकती। धार्मिक कर्मकांडों के नाम पर अधार्मिक एवं अमर्यादित व्यवहार का विरोध आवश्यक है।

चांदनी, सहारनपुर

धर्मग्रंथों में नारी हमेशा वंदनीय ही रही है

पुरुष वर्ग ज्ञान, तर्क, तथ्य एवं विवेक प्रधान है, लेकिन नारी आत्मीयता, स्नेह, प्रेम, सहृदयता, करुणा, दया, सहानुभूति जैसे दिव्य गुणों से संपन्न होने के कारण व्यक्तित्व के निर्माण, परिष्कार एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। पुरुष प्रज्ञा प्रधान है, तो नारी श्रद्धा प्रधान। श्रद्धा का स्थान प्रज्ञा से थोड़ा ऊंचा ही है।

वेद शाश्वत, सनातन हैं। उनमें नारी वर्ग के प्रति जो श्रद्धा का भाव है, वह स्तुत्य है। बाद में लिखे गए धार्मिक ग्रंथों में तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव है। कई ग्रंथों के मूल लेखन में बाद में शासकों की भावनाओं की संतुष्टि एवं कूटनीतिक चालों की पूर्ति के लिए परिवर्तन कर दिया गया है।

मूल रूप से भारतीय संस्कृति का विवेचन जहां भी होगा, वहां नारी को हमेशा श्रद्धा के भाव से ही वर्णित किया जाएगा। अन्य धर्मों के मूल ग्रंथों में भी कहीं नारी का असम्मान नहीं किया गया है। कुछ धर्माचार्य संस्कृति के मूल ग्रंथों पर ध्यान न देकर बाद में लिखे गए ग्रंथों को प्रमाण मान लेते हैं। यह अज्ञानता है। नारी वर्ग को संगठित होकर इसका कड़ा विरोध करना चाहिए और ऐसे धर्माचार्यों को भी सबक सिखाना चाहिए।

डॉ. सरोज बाला चौधरी, मथुरा

ऐसे साहित्य का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति रोकना है

हम भारतीय जिस धर्म व संस्कृति पर गर्व करते हैं, उस के द्वारा किसी काल में नारी को वह सम्मानपूर्ण स्थान नहीं दिया गया, जिसकी वह अधिकारिणी है। एक ओर नारी को देवी कहकर उसकी पूजा की बात कही गई, दूसरी ओर राम ने प्रजा संतुष्टि के बहाने निर्दोष सीता को निर्वासित कर दिया। युधिष्ठिर ने द्रौपदी को दांव पर लगाया, जैसे वह कोई वस्तु हो। तुलसी ने नारी को ताड़न के अधिकारी [illegible] बताकर उसकी तुच्छता प्रदर्शित की।

आज जब हम इक्कीसवीं सदी की देहरी पर खड़े हैं, स्त्रियों पर धर्म बंधन कहीं से भी शिथिल होता नहीं दिखाई पड़ रहा। हिंदू धर्म के ठेकेदार शंकराचार्य स्त्रियों को वेदपाठ से रोककर अपनी संकुचित मानसिकता दिखाते हैं, तो मुस्लिम संप्रदाय में स्त्रियों को उनके अधिकार दिए जाने को धर्म के लिए खतरनाक माना जाता है। 'कल्याण' जैसी पत्रिका में स्त्रियों पर विविध प्रतिबंधों का उल्लेख खेदजनक है। इन धार्मिक साहित्यों का लक्ष्य स्त्रियों को कूपमंडूक एवं विकलांग बनाए रखकर उन्हें प्रगतिशील बनने से रोकना है, समाज में पुरुषों का वर्चस्व बनाए रखना है। देश में जब नारी हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दे रही है, नारी अधिकार के विरुद्ध चलाया जा रहा यह अभियान निंदनीय ही नहीं, अमानवीय भी है। इसका विरोध करना हर बुद्धिजीवी का कर्तव्य है, क्योंकि सामान्य जनता तो धर्माचार्यों का ही अनुसरण करती है।

डॉ. जयश्री पुरवार, उरई

ये धार्मिक पुस्तकें नहीं छपनी चाहिए

पुरुष और नारी की समानता सिर्फ एक काल्पनिक बात है। एक तरफ तो नारी उत्थान की बात होती है, दूसरी [illegible] आचार-विचार से नारी-समानता को स्वीकारा नहीं जाता है। और-तो-और धर्म भी भेदभाव करने में नहीं चूकता। धर्म हमारे जीवन का वह महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसमें तर्क का प्रयोग नहीं होता।

देखने में आया है कि कुछ धार्मिक पुस्तकें, जिन्हें हम जीवन का स्रोत मानते हैं, ऐसी ही विचार-धारा से ग्रसित हैं। ये पुस्तकें इस वास्तविकता पर आधारित हैं कि नारी पुरुष के बराबर हो ही नहीं सकती।

यह एक विश्वव्यापी धारणा है—कहीं प्रत्यक्ष कहीं अप्रत्यक्ष। समझ में नहीं आता है कि जिस देश के संविधान में पुरुष-नारी को समान अधिकार हैं, वहां ऐसी पुस्तकें भी प्रकाशित होती हैं। ऐसी पुस्तकों को तो तुरंत प्रतिबंधित कर देना चाहिए, क्योंकि यह पुरुष को अत्याचार करने के लिए और प्रोत्साहित करती हैं। हमारा समाज वैसे भी पुरुष-प्रधान है और जब ऐसी पुस्तकें बाजार में धड़ल्ले से बिकती हैं, तो उनसे न सिर्फ नारी-सम्मान का हनन होता है, अपितु पुरुष-प्रधानता को भी बढ़ावा मिलता है।

नितिका पंत, नैनीताल

क्या है नारी सौंदर्य का मापदंड श्रृंगार या व्यवहार

स्वयं को सुंदर जताने की ललक ने नारी को श्रृंगार की नित नई विधियां अपनाने को प्रेरित किया। स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि नारी श्रृंगार को व्यवहार से कहीं ज्यादा महत्व देने लगी है। लेकिन नारी के सौंदर्य व आकर्षण का राज किसमें छिपा है—श्रृंगार में या व्यवहार में? सुमति भारद्वाज की एक नजर।

महकता यौवन, गुलाबों से कोमल, शर्बती अधर, दमकता रूप, किसी अप्सरा की मानिंद! शायद नारी का ईश्वर प्रदत्त यही वह शाश्वत रूप है, जिसने उसे प्रकृति की समरूपा बना सृष्टि की एक अदभुत रचना के रूप में प्रतिस्थापित किया है। इतिहास गवाह है, नारी के इसी सौंदर्य के आगे बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों और शूरवीरों ने न केवल अपने हथियार डाले हैं, बल्कि रूप-सौंदर्य उनके लिए दिव्य प्रेरणा का स्रोत भी रहा है। शायद इसीलिए सृष्टि के आरंभ से जबसे नारी ने अपने सौंदर्य स्वरूप व अस्तित्व के महत्व को पहचाना है, वह सौंदर्य के आधारभूत तत्वों को पाने अथवा कायम रखने के लिए सदैव प्रयत्नशील नजर आई है। उसके इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही श्रृंगार की उत्पत्ति हुई, जिसने उसके इस प्रकृति प्रदत्त रूप को संवारने के साथ-साथ उसमें ऐसा आकर्षण भी पैदा किया कि वह आज तक श्रृंगार को सौंदर्य का पूरक मान स्वयं को उसके बिना अधूरा पाती है।

मगर देश, काल और सभ्यता बदलने के साथ-साथ सौंदर्य के मापदंडों में आए बदलाव से जहां नारी की नख-शिख सौंदर्य वाली परिभाषा सौंदर्य के मापदंडों से पृथक हुई है, वहीं उसकी वैचारिक परिपक्वता, अनुभूति की सघनता, संवेदनशीलता एवं वाक्चातुर्यता सुंदरता के मापदंडों की पूरक समझी जाने लगी है, मगर सत्य तो यह है कि नारी सौंदर्य की चर्चा होते ही जेहन में सबसे पहले प्रश्न उठता है—कोई स्त्री सुंदर क्यों लगती है? यदि लगती भी है, तो वह कौन-सी खूबियां हैं, जो उसे सुंदर बनाती हैं? उसका श्रृंगार या व्यवहार! फिर इन दोनों में श्रेष्ठता किसी एक गुण की है, अथवा दोनों ही श्रेष्ठ हैं? यह भी एक कठिन प्रश्न है, मगर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह बात भली-भांति स्पष्ट होती है कि स्त्री का श्रृंगारयुक्त सौंदर्य तुरंत आकर्षित करता है, मगर व्यवहार बाद में। श्रृंगार में चूंकि क्षणिक आकर्षण होता है, इसलिए सौंदर्य से क्षणिक परिचय के बाद व्यवहार ही किसी स्त्री के स्वभाव व व्यक्तित्व का स्थायी परिचायक बनता है, क्योंकि व्यवहार एक मानव निर्मित गुण है, जिसमें ठहराव के साथ-साथ स्थायित्व का भी समावेश होता है। लेकिन वर्तमान में यह देखने को मिलता है कि नारी व्यवहार से अधिक श्रृंगार को महत्व देने लगी है।

मगर कोई भी स्त्री श्रृंगार करके चाहे कितनी भी सुंदर क्यों न लग रही हो, यदि उसका व्यवहार गरिमापूर्ण नहीं है, यानी बातचीत का अशिष्ट तरीका, स्वभाव कर्कश हो, रहन-सहन में अशिष्टता, तो उसके सौंदर्य का कोई मूल्य नहीं रह जाता है, जबकि उसी जगह वाणी में मधुरता रखने वाली, कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वहन करने वाली, परिवार के प्रति दायित्व निर्वहन व आत्मनिर्भरता एवं आत्मसम्मान से भरपूर नारी सोलह श्रृंगार किए हुए दूसरी स्त्री के सामने भी हजार गुना सुंदर लगती है। यह सच है, नारी के हृदय में बसी अत्यधिक श्रृंगार भावना ने व्यवहार का आकार काफी सूक्ष्म कर दिया है, जिसकी वजह से नारी शरीर पर श्रृंगार प्रभावी लक्षण की तरह व व्यवहार अप्रभावी लक्षण की तरह प्रदर्शित हो रहा है। फिर भी व्यवहार ही नारी सौंदर्य की पूर्ति करता है। श्रृंगार नारी के व्यवहार की पूर्ति कदापि नहीं करता। यदि ऐसा नहीं होता, तो अपना 'आप' बनाकर रखने व बिना श्रृंगार के सामान्य रहने वाली स्त्रियां आकर्षण का केंद्र बनने की हकदार ही क्यों बनें? वहीं परम सुंदर साम्राज्ञियां रंग-बिरंगे वस्त्र पहनकर, गहरा मेकअप पोतकर, व्यवहार को अभद्र बनाकर, हंसी का पात्र ही क्यों बनें?

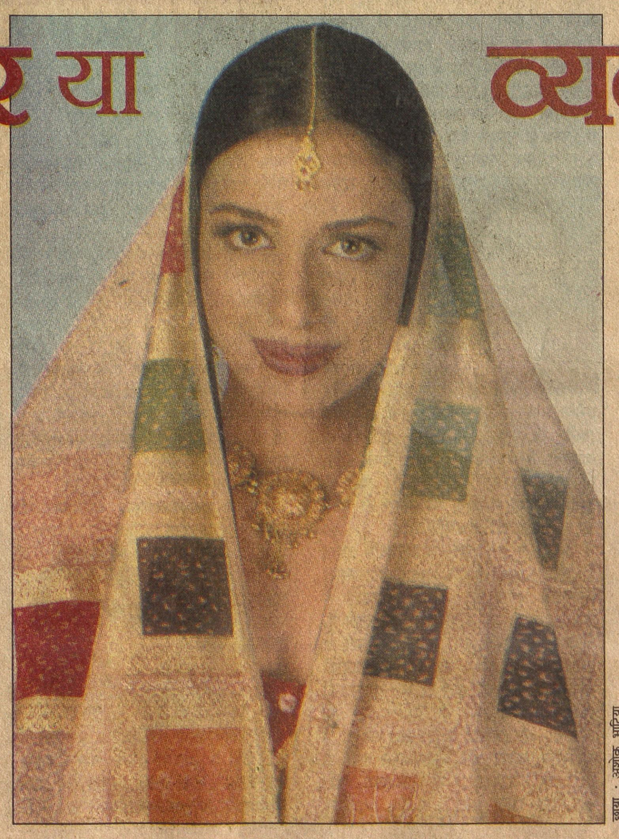

कहने का तात्पर्य है नैसर्गिक सौंदर्य में निहित मनभावन रूप स्त्रीत्व का समावेश दैहिक आकर्षण सौंदर्य प्रसाधनों का चतुरता से प्रयोग, ममत्व और उदारता की भावना, विचारों का खुलापन, दूसरों की बात सुनने का माद्दा और जीवंतता का गुण ही वे श्रेष्ठ व्युत्पत्तियां हैं, जो किसी भी नारी को संपूर्ण सौंदर्य प्रदान करती हैं। इसमें ऊपरी आवरण, यानी सौंदर्य के प्रसाधनों को कहीं भी प्राथमिकता नहीं दी जा सकती।

अतः कहना होगा कि नारी स्वयं में सुंदर होती है। यदि वह अपने नैसर्गिक गुणों को बचाए रखकर अपने को संपूर्ण क्षमता के साथ प्रस्तुत करने की मानसिकता व शक्ति जुटाकर व्यवहार का भी श्रृंगार कर ले, तो उसकी सुंदरता में निःसंदेह चार चांद लग जाएंगे।

छाया : अशोक भाटिया

हिन्दुस्तान

नई दिल्ली, सोमवार, 21 सितम्बर, 1998

दुनिया को इंकलाब की याद आ रही है आज। तारीख अपने आपको दोहरा रही है आज। —फ़िराक गोरखपुरी

अर्थव्यवस्था में जान डालने की कोशिश

परमाणु परीक्षणों के बाद अनेक देशों की तरफ से घोषित आर्थिक प्रतिबंधों तथा देश में पैदा राष्ट्रीयता की भावना के बाद प्रधानमंत्री देश की आर्थिक विकास की रफ़्तार तेज करने के लिए भारतीय उद्यमियों का सक्रिय सहयोग लें, इससे अच्छी बात नहीं हो सकती। कुछ समय पहले जब प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इस संबंध में पहल की थी तो सरकार पर आज की तुलना में ज्यादा अनिश्चितता के बादल छाए हुए थे। फिर इस घोषणा को सरकार के अंदरूनी समीकरणों में अपना वजन बढ़ाने का प्रयास भी माना गया। पर बहुत कम समय में ही अधिकारियों-प्रमुख व्यवसायियों की बैठक कराना, छह कमेटियों की घोषणा, उन्हें अपना आकलन महीने भर में पेश करने को कहना तथा इस पूरे काम के लिए स्वयं प्रधानमंत्री द्वारा सात सूत्री कार्यक्रम बनाना यह बताता है कि वे इस पूरे प्रयास को काफी गंभीरता से लेते हैं तथा आर्थिक मंदी के मौजूदा दौर में भी तेज आर्थिक विकास उनकी प्राथमिकता है। यह कदम इसलिए भी ज्यादा ठीक लग रहा है कि देश का निजी क्षेत्र काफी समय से दबाया जाता रहा है (फिर भी उसमें से अनेक समूहों ने कैसे तेज तरक्की कर ली यह अलग चर्चा का विषय है)। अभी हाल तक तो हर काम को सार्वजनिक क्षेत्र के जिम्मे देने का चलन था और अब साफ हो गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र का अधिकांश हिस्सा अर्थव्यवस्था पर बोझ ही साबित हुआ है। फिर जब उदारीकरण लाने और लालफीताशाही हटाने का अभियान चला तो स्पष्टतः सारा झुकाव विदेशी पूंजी को आकर्षित करने पर था। कई क्षेत्रों में तो देशी निजी क्षेत्र की कंपनियों की जगह बहुराष्ट्रीय कंपनियों को ही प्राथमिकता दी गई। अनेक तरह की परेशानियों, जिनमें महंगी पूंजी सबसे बड़ी है, के साथ ही देसी उद्यमियों को विदेशी प्रतिद्वंद्विता में टिकने को कहा गया और दूसरों की कौन कहे इस सरकार तक ने टाटा के एयर लाइंस समेत कई अन्य मामलों में स्पष्टतः देसी उद्यमियों के खिलाफ फैसला किया। मुंबई के अनेक उद्यमियों ने उदारीकरण का लाभ विदेशियों को जाने की शिकायत भी की। पर व्यापारी सरकार से लड़ तो नहीं सकते। सो अच्छा हुआ कि कुछ प्रतिबंधों के कारण तो कुछ हाल में जारी राष्ट्रीय भावना के चलते तो कुछ हद तक आर्थिक बदहाली के कारण भी सरकार को योजना और कार्यान्वयन के स्तर से ही उद्यमियों के सहयोग की जरूरत महसूस हुई और उसने इस दिशा में पहल भी की। प्रधानमंत्री ने इस अवसर पर जो सात सूत्र— उद्यमशीलता बढ़ाना, विश्वव्यापी मंदी से बचाव, देसी कंपनियों की उत्पादकता बढ़ाना, तेज विकास के लिए जरूरी संरचना जुटाना, विकास का लाभ निचले स्तर पर पहुंचाना, कौशल और जीवनोपयोगी सुविधाओं को बढ़ाना तथा 7 से आठ फी सदी विकास दर को हासिल करना—बताए हैं उनसे असहमति मुश्किल है। पर इसमें बहुत नई चीजें नहीं हैं। सात से आठ फीसदी विकास दर पाने पर भी सवाल उठाए जा सकते हैं पर इस सारी पहल में नयापन यही है कि सीधे उद्यमियों से संवाद और सहयोग का प्रयास किया गया है। उनकी भागीदारी नई चीज है और उम्मीद करनी चाहिए कि वे सात-आठ फीसदी विकास दर जैसे लक्ष्णों को पूरा करने में भागीदार बनेंगे। यह उम्मीद तो करनी ही चाहिए कि निजी क्षेत्र अब पक्षपात का आरोप नहीं लगाएगा।

पाक में शरीयत कानून का विरोध

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने अपने देश की आंतरिक समस्याओं से लोगों का ध्यान हटाने के लिए कट्टरपंथी रुख अपनाया लेकिन लगता है कि अब वह खुद ही अपने जाल में फंस गए हैं। उन्होंने पाकिस्तान में शरीयत का कानून लागू करने का ऐलान इस मकसद से किया था कि उन्हें सबकी ही वाहवाही मिलेगी और लोगों का ध्यान आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं की ओर से हट जाएगा। हालांकि यह तो जरूर हुआ है कि लोगों का ध्यान आर्थिक राजनीतिक समस्याओं की ओर से किसी हद तक हटा है, लेकिन शरीयत वाला मुद्दा ज्यादा पकड़ गया है। विपक्षी दलों ने तो सरकार के खिलाफ कमर कस ही ली है, लेकिन सत्तारूढ़ दल में भी विरोध का स्वर तेजी से उभर रहा है। सत्तारूढ़ दल की ही एक वरिष्ठ सांसद ने अपना इस्तीफा दे दिया है ओर साथ ही यह ऐलान भी किया है कि वह सत्तारूढ़ दल के अन्दर ही एक शरीयत विधेयक विरोधी गुट तैयार कर रहे हैं। सांसद खुर्शीद कसूरी ने अपनी सदस्यता से इस्तीफा देने के साथ-साथ यह भी ऐलान किया कि शरीयत कानून की व्यवस्थाओं के विरोध में उन्होंने विद्रोह का जो झंडा उठाया है उसका समर्थन सत्तारूढ़ दल के तीस-चालीस सांसद कर रहे हैं। इस सिलसिले में ध्यान देने की बात यह है कि उक्त सांसद खुर्शीद कसूरी की प्रधानमंत्री के साथ संसदीय दल की बैठक में ही कहासुनी हो गई और उसके बाद उन्होंने इस्तीफा दिया। नवाज शरीफ ने कहा कि खुर्शीद कसूरी पार्टी की नीति के खिलाफ आवाज उठता रहे हैं इसलिए उन्हें इस्तीफा दे देना चाहिए और खुर्शीद ने तत्काल ही अपना इस्तीफा सौंप दिया। हालांकि उसके बाद सत्तारूढ़ दल के अनेक सांसदों ने उन पर इस्तीफा वापस लेने के लिए दबाव भी डाला। फिर शरीफ ने स्वयं उनका इस्तीफा वापस कर दिया। नवाज शरीफ ने दावा किया कि वह विपक्षी दलों से भी सम्पर्क कायम करने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन शरीयत-विरोधी गुट इस बात पर जोर दे रहा है कि इस मुद्दे पर जनमत संग्रह कराया जाए। नवाज शरीफ ने उन दलों का भी समर्थन बटोरने की कोशिश की जो मजहब के नाम पर सियासत करते हैं। लेकिन, ताज्जुब की बात यह है कि घोर दक्षिण पंथी दलों ने भी नवाज शरीफ की नीतियों का समर्थन करने से मना कर दिया है और उन पर आरोप लगाया है कि वह देश की जनता को गुमराह कर रहे हैं।

असल में नवाज शरीफ ने ऐसे समय में शरीयत का मुद्दा उठाया है जब उनकी खुद की विश्वसनीयता संदेह के घेरे में है। एक तरफ तो वह पाकिस्तान को मार्डन बनाने की बात करते हैं, दूसरी ओर शरीयत कानून थोपना चाहते हैं और तीसरी तरफ तालिबान से अच्छे रिश्ते भी बनाए रखना चाहते हैं। देश की माली हालत इतनी खराब हो चुकी है कि वह संयुक्त अरब अमीरात और ब्रिटेन से मदद पाने की कोशिश में जुटे हैं। विकास कार्य लगभग ठप पड़ा हुआ है।

अमरीकी परमाणु नीति की विसंगतियां

भारत के परमाणु परीक्षण के बाद से लगता है अमरीका अब तक यह नहीं तय कर सका कि इस नवोदित परमाणु-शक्ति संपन्न देश के प्रति क्या दृष्टिकोण और बर्ताव अपनाये। उसके इस असमंजस से भारत में अमरीका को लेकर एक भ्रम की सी स्थिति जरूर बनी हुई है और मौजूदा भारतीय हुक्मरान लगातार इस कोशिश में हैं कि उसके असमंजस को अंततः सकारात्मक दृष्टिकोण में तब्दील किया जाए। भारत सरकार के विशेष प्रतिनिधि जसवंत सिंह और अमरीकी प्रतिनिधि टालबोट के बीच बिना किसी निष्कर्ष के खत्म होने वाली वार्ताओं को इसी कोशिश के तौर पर देखा जा सकता है। लेकिन इन सारी कोशिशों के बीच विदेश नीति और परमाणु नीति के तहत अमरीका में जो नीतिगत फैसले लिए जा रहे हैं वे मूलतः भारत-विरोधी हैं। मसलन, अमरीका से मिलने वाली विकास संबंधी और मानवीय सहायताओं पर भी प्रतिबंध लगाने की नीति को भारत-विरोधी नीति की ही श्रेणी में रखा जाएगा। अमरीकी कांग्रेस के रिपब्लिकन सांसद डान वर्टन ने हालांकि संसदीय समिति की सिफारिशों और संशोधनों को लागू करने की घोषणा नहीं की है। लेकिन [illegible]

वैष्णो देवी से जुड़ा विवाद दुर्भाग्यपूर्ण

सुरेश डुग्गर

वैष्णो देवी तीर्थ स्थल की यात्रा पर आने वाले लाखों श्रद्धालुओं का दर्शनों के लिए आना निरंतर जारी है लेकिन [illegible]

[illegible]

तीर्थस्थल का व्यावसायिक दोहन

[illegible]

... जब पूर्व राज्यपाल जगमोहन ने बोर्ड का गठन किया तो इन बारीदारों को चढ़ावे और पूजा अर्चना से अलग कर दिया गया। यह बारीदार न्यायालय में चले गए और कुछ दिन पहले सर्वोच्च न्यायालय ने इन्हें मुआवजा दिए जाने का फैसला सुनाया।

[illegible] परंपराओं तथा मान्यताओं को अपने 12 वर्षों के काल ही में खत्म कर दे। अगर भाजपा नेताओं के बयानों पर नजर दौड़ाई जाए तो सचमुच यह अधिकार हिन्दू समाज ने बोर्ड के अंग्रेजदा अधिकारियों को दे दिए हैं कि वे जब चाहें, जैसा चाहे मनमाना संशोधन तीर्थस्थल के इतिहास, [illegible]

[illegible] तीर्थस्थल का अधिग्रहण किया तो निश्चित रूप से यह एक ऐसा फैसला था जिसकी चौतरफा प्रशंसा हुई और जिसे सभी ने सराहा। जगमोहन के प्रयास में कोई खोट या कोई कमी तो नहीं थी लेकिन उनके राज्य से वापस चले जाने के बाद [illegible] अधिग्रहण के समय जगमोहन ने तीन बातों पर विशेष जोर दिया था और उस दिशा में काम भी शुरू किया था। ये तीन बातें थीं—तीर्थस्थल के चढ़ावे को शिक्षा, चिकित्सा व तीर्थस्थल के विकास पर खर्च किया जाएगा।

इसके साथ-साथ कटड़ा कस्बे के विकास के लिए भी जगमोहन ने कई योजनाओं की घोषणाएं की थीं। उन्होंने श्री माता वैष्णो देवी संस्कृत विश्वविद्यालय, मेडिकल कालेज सहित ऐसी कई योजनाओं की घोषणा की जिनसे आम आदमी को बोर्ड के गठन के पीछे उनके कल्याणकारी मकसद की सुगंध आई थी। मगर कई बार अच्छे कदम भी आगे जाकर लालफीताशाही और नौकरशाही का शिकार हो जाते हैं। लगभग यही कुछ बोर्ड के साथ हुआ। गठन के कुछ दिनों के बाद ही जगमोहन को राज्यपाल के पद से हटा दिया गया जिसका असर बोर्ड पर पड़ा।

जगमोहन के जाने के बाद बोर्ड के नौकरशाहों ने बोर्ड को पूरी तरह से एक व्यापारिक संस्था में बदलना शुरू कर दिया। शिक्षा, चिकित्सा व तीर्थस्थल के विकास के कार्यों को पीछे छोड़ दिया गया। और आज 12 वर्ष बीत जाने के बाद भी विश्वविद्यालय का गठन नहीं हो सका। और इसी तरह से करोड़ों रुपयों की आय होने के बावजूद भी एक डिस्पेंसरी तक भी बोर्ड लोगों को दे नहीं पाया। बोर्ड ने इस दौरान जो मनमाने फैसले किए और जिनसे आस्थाओं व मान्यताओं को धक्का पहुंचा उनमें प्रमुख था उस पवित्र गुफा को बंद कर दिया जाना जो तीर्थस्थल के इतिहास से लेकर माता के अस्तित्व तक से जुड़ी हुई है। इस गुफा के बारे में मान्यता है कि इसमें 33 करोड़ देवी-देवताओं का वास है। यही नहीं ऐसा मानना है कि वैष्णोदेवी ने इसी मार्ग से गुफा में प्रवेश किया था और भैरों का वध किया था। बोर्ड द्वारा वैष्णोदेवी के बारे में यह इतिहास प्रकाशित किया गया है कि भैरों का धड़ पवित्र गुफा के प्रवेश द्वार से कुछ दूरी पर स्थित है और उस पर श्रद्धालुओं द्वारा पांव रखने के बाद ही तीर्थ यात्रा सफल होती है।

मगर अंधाधुंध व्यवसायीकरण के कारण इन मान्यताओं व विश्वास को बोर्ड ने तहस-नहस कर दिया। यही नहीं सुरक्षा के नाम पर नारियल के चढ़ावे पर प्रतिबंध लगा दिया जबकि नारियल का महत्व इसलिए है क्योंकि वैष्णोदेवी के भक्त ध्यानू भगत ने देवी के चरणों में अपना शीश काट कर चढ़ाया था। जिस पर देवी ने प्रकट होकर यह घोषणा की थी कि आज के बाद भक्त नारियल चढ़ाया करेंगे और नारियल को शीश की ही मान्यता होगी।

गत 12 वर्षों के दौरान बोर्ड ने कई निर्माण कार्य किए, कई बड़े भवन बनाए जो निश्चित रूप से उन लोगों के लिए बेहद आकर्षित हैं जिन्हें लगता है कि बड़े-बड़े भवन विकास की परिभाषा हैं लेकिन इन भवनों को बनाने के लिए कितनी बार त्रिकुटा पर्वतों का सीना विस्फोटकों से छलनी किया गया, इस ओर कोई नहीं देखना चाहता। न ही हिन्दू, संगठन और न ही वे नौकरशाह जिन्होंने मनमाने ढंग से यह निर्माण कार्य करवाए। आज कटड़ा से गुफा तक कई इमारतें, कई दुकानें बन चुकी हैं जो किसी बड़े शहर के एक बाजार का ही रूप लगता है। हिमालय पर्वत श्रृंखला की सबसे कम उम्र की पर्वत मालाओं में स्थित इस तीर्थस्थल की निशानी गुफा को इन विस्फोटों से खतरा है इसका प्रमाण है गत कुछ वर्षों से हो रहे भूस्खलन।

इन दिनों अखबारों में जिस ढंग से ताजा विवाद को लेकर बहसें छेड़ी गई हैं उसे लेकर हमने जहां उपरोक्त चर्चा छेड़ी है। इसका मकसद यह नहीं कि बोर्ड का गठन ठीक नहीं था या उसके द्वारा किए गए सभी कार्य गलत थे। निश्चित रूप से गत कुछ वर्षों से तीर्थस्थल पर आने वाले श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ी है और उसकी आय में भी वृद्धि हुई है लेकिन इस आय का जहां इस्तेमाल करना चाहिए था वहां न करके बोर्ड ने दुकानें व व्यावसायिक इमारतें बनाने में किया। बोर्ड की आम लोगों के प्रति जवाबदेही न होने से ही आज एक ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि जगमोहन द्वारा उठाया गया अच्छा कदम विवादों से घिर गया है। आखिर जम्मू-कश्मीर सरकार को क्या सूझी कि उसने एक स्वायत्तता प्राप्त संस्था में कुछ संशोधन करने की कोशिश की है। सरकार जो स्पष्टीकरण दे रही है वह काफी लचीला है। सरकार का कहना है कि उसे बारीदारों की ओर से एक ज्ञापन हासिल हुआ था जिसमें कुछ मांगें की गई थीं। स्पष्टीकरण में कहा गया है कि सरकार केवल हासिल हुए ज्ञापन पर अमल कर रही है। आखिर ज्ञापन को कूड़े की टोकरी में भी फेंका नहीं जा सकता था लेकिन ऐसा नहीं है। दरअसल सरकार और बोर्ड के बीच गत वर्ष से ही खींचातानी चल रही है और यह खींचातानी राजनीतिक कम नौकरशाहों की लड़ाई ज्यादा है। गत वर्ष फारूक सरकार ने बोर्ड के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अनिल गोस्वामी को बोर्ड से वापस बुला लिया था। लेकिन तत्कालीन राज्यपाल जन. के. वी. कृष्णराव ने गोस्वामी को वापस राज्य सरकार की सेवा में नहीं भेजा। इस पर राज्य सरकार के कुछ बड़े नौकरशाहों ने अपनी प्रतिष्ठा का भी मुद्दा बना लिया और गोस्वामी को पूरी तरह से बोर्ड के हवाले कर दिया। जबकि इससे पहले गोस्वामी बोर्ड के अतिरिक्त कार्यभार के साथ-साथ राज्य सरकार में सचिव/आयुक्त स्तर के पद पर तैनात थे। यहां यह उल्लेखनीय है कि अनिल गोस्वामी एक तरह से बोर्ड के पर्याय बन चुके हैं जो पिछले 12 सालों से मुख्य कार्यकारी अधिकारी के पद पर बने हुए हैं।

गत वर्ष अचानक पैदा हुआ यह विवाद राज्यपाल व मुख्यमंत्री ने आपसी बातचीत से कुछ हद तक सुलझा तो लिया लेकिन अंदर ही अंदर कशमकश दोनों ओर से लगातार चलती रही। ताजा विवाद इसी कशमकश की देन है। राज्य सरकार ने बारीदारों को हिस्सा दिए जाने को लेकर बिल तैयार करके एक विवाद तो छेड़ ही दिया है जिसमें सरकार सफल रही है। बिल पारित होता है या नहीं लेकिन बोर्ड को उसकी हैसियत बताने की सरकार की कोशिश जरूर कुछ हद तक सफल हुई है।

बाघों को बचाने की व्यावहारिक योजना

□ उषा राय

मई की दोपहरी, चिलचिलाती धूप से बचने के लिए नीदरलैंड से आये वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड के नस्ल प्रबंधक जिकी जोसमैन और बाघ संरक्षक ब्रिगेडियर रणजीत तलवार ठंडी बीयर की चुस्कियां ले रहे थे। कार्बेट नेशनल पार्क से लगे टाइगर टॉप होटल में भारतीय बाघों की स्थिति पर कार्बेट फाउंडेशन के अधिकारियों से चर्चा हो रही थी। तभी एक ग्रामीण वहां आया और उत्तेजना से भर कर चिल्लाने लगा। बड़ी मुश्किल से समझ में आया कि वह क्या चिल्ला रहा था। 'मैं लुट गया, मैं मर गया', वह रो रहा था। भागता हुआ कार्बेट फाउंडेशन आया था क्योंकि उसने सुन रखा था कि कोई सहृदय व्यक्ति बाघों द्वारा मारे गये ग्रामीणों के पशुओं का मुआवजा दे रहा है। वह जानने आया था कि क्या यह सच है?

एक घंटे के भीतर जीप की व्यवस्था हुई और फाउंडेशन के अधिकारी ग्रामीण समेत कुछ और लोगों के साथ घटनास्थल पर चल पड़े। पशु मारे जाने की घटना राम गंगा के उस पार हुई थी, जो टाइगर टॉप से दो किलोमीटर की दूरी पर था। कुछ गांव वालों को साथ लेकर घटनास्थल पर पहुंचे, इस बार भैंस का शिकार हुआ था। बाघ ने उसकी गर्दन तोड़ दी थी और अपना शिकार छिपाना चाहता था, तभी दूसरी भैंस आ गई और वह भाग गया।

उस 'भैंस' का 'पंचनामा' हुआ अर्थात भैंस का विस्तृत विवरण, उम्र, वजन और आकृति ली गई और इसे गांव के मुखिया से प्रमाणित कराया गया। भैंस का मूल्य साढ़े तीन हजार आंका गया और उसे तुरंत अदा कर दिया गया। उस ग्रामीण ने अधिकारियों से एक फटे नोट बदल लेने का आग्रह किया क्योंकि उसकी मां फटे नोट देख कर बहुत नाराज होती है। पशु के मारे जाने और मुआवजा भुगतान की यह पूरी प्रक्रिया दो-तीन घंटे में समाप्त हो गई।

कार्बेट नेशनल पार्क के आसपास बाघों द्वारा पालतू जानवरों के मारे जाने की घटना आम है। वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड और बाघ संरक्षण कार्यक्रम के मिले-जुले प्रयास से मारे गये पशुओं का मुआवजा तुरंत अदा करने की योजना काफी प्रभावी रही है। पहले मुआवजा समय पर नहीं मिलने के कारण ग्रामीण बाघों को जहर दे देते थे। लेकिन अब उन्हें अपने जानवर का तुरंत मुआवजा मिल जाने से उनका गुस्सा कम हो गया है और इससे बाघ संरक्षण कार्यक्रम को सफलता मिली है।

पिछले वर्ष अक्तूबर-नवम्बर में बाघों को जहर देने की घटनाओं में काफी इजाफा हुआ था। सुरक्षित वनों में बाघों पर हो रहे इस हमले से कार्बेट, दुधवा और कटरनिया घाट के संरक्षकों के कान खड़े हुए। यह सही है कि बाघों के संरक्षण के लिए जीप, नाव और वायरलैस सेट थे, लेकिन मनुष्य द्वारा उत्पन्न इस भयानक स्थिति से निपटना एक टेढ़ी खीर था, लेकिन जरूरी भी। गांव वाले अपने मारे गये पशु की लाश पर कीटनाशक दवायें छिड़क देते थे और बाघ जब इसे खाता था तो मर जाता था। इस प्रक्रिया में बड़ी संख्या में बाघ मारे गये। पहले ही बाघों की संख्या चार हजार से ढाई हजार तक पहुंच गई है।

बाघों को जहर देने के मामले ने संरक्षकों की चिन्ता बढ़ा दी। बाघ संरक्षकों की संचालन समिति के समक्ष इस बाबत रिपोर्ट सौंपी गई। आंध्र प्रदेश में दो वर्ष के भीतर अट्ठाईस बाघ जहर देकर मारे गये थे। आंध्र प्रदेश के उग्रवादियों ने ग्रामीणों को जहर देने के लिए उकसाया था। पालतू जानवरों के बाघ द्वारा मार देने पर भी उन्हें उचित मुआवजा नहीं मिलता था। इसलिए उग्रवादी गांववालों को बाघ मारने के लिए उकसाते थे।

मारे गये पशुओं के लिए मुआवजा देने की योजना इस वर्ष जनवरी से लागू की गई। एक लाख की राशि गैर सरकारी संस्था के कुछ समर्पित लोगों के पास रखी गई। वे पार्क के अधिकारियों के साथ दुर्घटना स्थल पर जाते हैं और मामले की पूरी पड़ताल करते हैं। भुक्तभोगी व्यक्ति को तुरंत मुआवजा अदा कर दिया जाता है। जानवर के बचे हुए अंश को जला दिया या अच्छी तरह दफन कर दिया जाता है, ताकि कोई उस पर जहर न डाल सके। इस कार्य को अंजाम देने के लिए गाड़ी मुहैया कराई जाती है।

बाघ संरक्षण की इस योजना की शुरूआत कार्बेट, दुधवा कटरनिया घाट में हुई। बाद में उसे इस वर्ष जून से पलामू (बिहार) में लागू किया गया। उत्तर प्रदेश में जानवरों का मुआवजा उसके असली मूल्य के बराबर दिया जाता है। इसे बाघ संरक्षण प्रोग्राम और सरकार मिल कर वहन करते हैं।

आंध्र प्रदेश में पैसों की कमी नहीं है, लेकिन घटनास्थल तक पहुंचने के लिए वाहन ही नहीं है। बाघ संरक्षण प्रोग्राम ने दो जीप मुहैया कराई है, जो नागार्जुन सेल, श्री सैलम, इतुरनगरम और पक्खल वाइल्ड लाइफ सैन्चुरी के लिए काफी नहीं है।

आज जब बाघों की संख्या घट रही है और उनके लुप्त होने का खतरा बढ़ गया है, ऐसे में मुआवजा देने की योजना काफी कारगर सिद्ध हुई है। यहां बाघ संरक्षण प्रोग्राम, गैर सरकारी संस्था तथा राज्य सरकार मिल कर काम कर रही है। इन दिनों कहीं से भी बाघों को जहर देने की एक भी घटना नहीं घटी है। समय ही बतायेगा कि बाघ संरक्षक भाग्यशाली थे, अथवा गांव वालों ने अपना रूख बदल लिया है।

केवल उत्तर प्रदेश में जनवरी से जून के बीच 156 जानवर मारे गये और ग्रामीणों को 1,85670 रुपये बतौर मुआवजा दिया गया।

अभी तो इस योजना से बाघों को राहत मिली है। लेकिन तब क्या होगा जब, 1999 के अंत में बाघों के संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय कोष समाप्त हो जायेगा।

कादर खान 'इन', क्लिंटन 'आउट'

• आभार

मैं नहीं चाहता कि महिला आरक्षण बिल की तरह 'ब्रह्माण्ड गीत' भी जमीन-आसमान के बीच झूल जाए। जिसने भी यह प्रस्ताव रखा हो कि 'गजब किया तेरे वादे पे एतवार किया, तमाम उम्र यूं ही तेरा इंतजार किया' गीत को ब्रह्माण्ड सुंदरी की तरह ऊंचाई मिले, उन्होंने बहुत नेक काम किया। उस प्रस्तावक से सिर्फ यही गुजारिश होगी कि वे इसे जाहिर न करें कि किस पार्टी से उनका संबंध है। अगर यह जाहिर हो गया तो बाकी दल वाले उनके प्रस्ताव को महिला आरक्षण बिल बना देंगे। अगर उनका किसी गठबंधन से भी लगाव है, तब भी खतरा मौजूद है। नाचने-खसोटने वालों की वहां भी कमी नहीं है। अगर कहते हैं कि उनका किसी दलीय राजनीति में विश्वास नहीं है तो कृपया अपने को अन्ना हजारे का शिष्य न बताएं वरना जेल की हवा खानी पड़ेगी। सुंदरलाल बहुगुणा से भी अपने को चिन्हित न करें अन्यथा टिहरी बांध में ही अटक जाना पड़ेगा। मेधा पाटकर और स्वामी अग्निवेश से भी अपने को न जोड़ें क्योंकि तब आपका प्रस्ताव धरना स्थल का गीत बन जाएगा।

गीत पर खतरे कम नहीं हैं। साफ-शफाक हालत में यह बच निकले तो कम बड़ी सफलता नहीं होगी। दलीय-गैर दलीय खतरे ही नहीं, और भी बहुत कुछ है। पूछने वाले तो यह भी पूछेंगे कि यह गीत या प्रस्ताव किस जाति का है? किस धर्म से इसका जुड़ाव है? अल्पसंख्यक वाली गुणवत्ता इसमें है या नहीं? रथयात्रा में इसकी उपयोगिता होगी या नहीं? अल्फा, बोडो, तालिबान, सी. आई. ए., आई. एस. आई. की लक्ष्यपूर्ति में कहीं यह अड़ंगा तो नहीं डालेगा? सरसों के तेल में इसकी मिलावट हो सकती है या नहीं? नरसिंह राव के उपन्यास 'इनसाइडर' चन्द्रशेखर की दाढ़ी, वी. पी. सिंह की पेंटिंग, देवेगौड़ा की नींद, गुजराल की चवनिया मुस्कराहट तथा अटल बिहारी वाजपेयी की कविता में इसकी जगह तो नहीं बनी है?

वैसे प्रस्तावक महोदय का तर्क है कि इस गीत में गुणवादी और अगुणवादी से लेकर निर्गुणवादी तक के सारे तत्व मौजूद हैं। किसी भी कसौटी पर इसे कसा जा सकता है—खरा का खरा उतरेगा। इसमें लोहियावादी को सोनियावादी, सोनियावादी को कांशी-मायावादी और मार्क्सवादी को कांग्रेसी-पिछलगूवादी होने के भरपूर मौके उपलब्ध हो सकते हैं। इस गीत में पी. एम. (प्राइम मिनिस्टर नहीं, प्रमोद महाजन), एम. एल. (मार्क्सवाद-लेनिनवाद नहीं, मुलायमवाद और मोनिका लेविंस्कीवाद), एच. एम. (होम मिनिस्टर नहीं, हेडमास्टर), का समावेश सरसों के तेल में आर्जीमोन की तरह है। इसका गायन सी. पी. से लेकर सी. पी. तक

ताना-बाना

यानी कनाट प्लेस से लेकर चीन-पाकिस्तान तक आसानी से हो सकता है। मतलब ब्रह्माण्ड तक इसका साम्राज्य आसानी से फैल सकता है। उसमें एक सुझाव आया कि इस प्रस्ताव के विरोध में कोई वीटो का इस्तेमाल न कर दे, इसलिए अमरीका से संबंध विकसित किए जाएं। तय हुआ कि तीसरी दुनिया का कोई सबसे 'गंभीर' व्यक्ति क्लिंटन को अपने जाल में फंसाए। अंततः काफी खोज-बीन तथा जनमत के आधार पर हिन्दी सिनेमा के अप्रतिम व्यक्तित्व कादर खान का चयन किया गया। इसे एक सुखद संयोग भी माना गया कि कादर खान और क्लिंटन एक राशि जैसे हैं। उनमें इतनी जबर्दस्त समानता है कि दोनों को कुछ भी करने की आजादी है। वे कुछ भी बोल सकते हैं। उन पर किसी की कोई रोक नहीं है।

प्रस्ताव सुन कर कादर भाई खुश हुए। अपने महत्व का पता इतने वर्षों बाद चला। लेकिन उन्होंने क्लिंटन से समर्थन प्राप्त करने के मामले का कड़ा विरोध किया! कहा—यह तो स्वदेशी पर बहुराष्ट्रीय कंपनी के हमले जैसा है। वे गला फाड़-फाड़ कर एक और स्वदेशी मार्का शक्ति कपूर को बुला बैठे। समवेत स्वर में गीत के पक्ष में कहना शुरू किया कि गीत कोई लेविंस्की तो है नहीं कि क्लिंटन के पास विचार के लिए छोड़ दें। वह पाकिस्तान, संयुक्त राष्ट्र संघ और हिलेरी भी नहीं है कि उनकी मर्जी पर पीछे-पीछे चलने के लिए बाध्य करें। दरअसल यह गीत वह गीत है जो स्वयं सर्वस्वीकृत है। 'गजब किया तेरे वादे पे एतवार किया . . .' में अमरीका की आवाज है आतंकवादियों के लिए। राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चा की शिकायत है कांग्रेस से। कम्युनिस्टों का गुस्सा है सोनिया से। बूटा सिंह का दर्द है उसमें। वाजपेयी-जयललिता की भद्द है उसमें। सीताराम केसरी अपने भाग्य को कोस रहे हैं और सवर्ण भाई लोग वी. पी. सिंह को दोष दे रहे हैं। इस गीत में हर देश और हर आदमी की आवाज है।

कादर खान का तर्क सबकी आंखें खोल गया। बालीवुड की तकनीक गजब की होती है। जरा-जरा सी बात पर किसी को भी फिल्म से बाहर कर दिया जाता है तो किसी दूसरे को बुला लिया जाता है। रवीना को निकाला तो तब्बू को ले आया, करिश्मा को बाहर का रास्ता दिखा दिया तो शिल्पा के आने का रास्ता साफ कर दिया। मनीषा आई तो काजोल गई। माधुरी ने 'इन' किया तो 'जूही' आउट हुई। तीसरी दुनिया ने इससे सहमति जताई और इसी तकनीक का इस्तेमाल किया। फिर क्या था, कादर खान ने 'इन' किया और 'क्लिंटन' आउट हुआ।

बकौल कादर खान: अब देखना अपना बेवकूफ जैसा चेहरा लेकर वे दुनिया के बेवकूफों को कैसे बेवकूफ बनाते हैं। गीत ब्रह्मांड गीत बनकर रहेगा और कादर खान का सिक्का जम कर रहेगा।

गंदी बस्तियों और मिलावट का रिश्ता

अगस्त का पूरा महीना सरसों के मिलावटी तेल तथा दूसरे खाद्य तेलों से उपजी एक नई बीमारी 'ड्राप्सी' की ही खबरों से तथा उनसे होने वाली मौतों से सहमा रहा। अब तक इससे मरने वाले मरीज तथा नए भरती होने वाले मरीजों की खबरें आ ही रही हैं। जहां तक इस खबरों का प्रचार-प्रसार हुआ, लोग सहम गए हैं।

दिल्ली में किसी भी अधिकृत बस्ती व किसी भी पोश कालोनी में इस प्रकार का कोई हादसा नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि दिल्ली की स्लम तथा अनधिकृत बस्तियां एक अनन्त-अथाह गहरे समन्दर के समान हैं। यहां जो न हो वह कम है। जितनी भी मिलावटी व 'डुप्लीकेट' वस्तुएं बिकती और बनती हैं—वह इन्ही बस्तियों में! इन्हीं बस्तियों में अन-ब्रांडिड तेल की छोटी मिलें या कोल्हू लगे होते हैं और यही तेल इन बस्तियों में धड़ल्ले से बिक जाता है। इसके अलावा इन बस्तियों में टूथपेस्ट, साबुन, ब्रुश, दवाइयां तथा दूसरा सामान भी डुप्लीकेट होता है। तमाम खाद्य वस्तुएं मिलावट से भरी होती हैं—दाल, चावल, गेहूं आदि में वजन बढ़ाने के लिए रेत मिलाई जाती है। सीमेंट में राख और चाय पत्ती में भूसा आदि। मजबूर व मजदूर इंसान को ये सब वस्तुएं नकद, उधार और सस्ती मिल जाती हैं—जिन्हें खाकर वह बीमार हो जाता है और अकाल मृत्यु की गोद में समा जाता है।

यहां किसी प्रकार की चैकिंग नहीं होती, किसी को कोई डर नहीं होता। आसपास ही ऐसी वस्तुएं बनाई और बेची जाती हैं। बीमारी और उससे होने वाली मौत की भयानकता बुरी होती है। ये इस प्रकार की बस्तियों में विकसित होकर पूरे राष्ट्र को अपनी चपेट में ले लेती हैं।

—ज्ञान वर्मा, 103, प्रताप विहार, पार्ट-1, नांगलोई, दिल्ली-41

बसों के आवंटन में धांधली

लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व दिल्ली परिवहन निगम के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक जी.एस. चीमा ने घोगा गांव के निवासियों को यह आश्वासन दिया था कि निगम के बेड़े में बसों का सुधार होते ही इस गांव के सभी बंद पड़े रूटों पर सारी बस सेवाएं बहाल कर दी जाएंगी किन्तु खेद का विषय है कि आठ हजार की आबादी वाले इस उपेक्षित गांव घोगा के सर्वाधिक राजस्व कमाने वाले रूट नं. 136 पर एक भी किलोमीटर स्कीम की बस सेवा प्रारंभ नहीं की गई।

माननीय परिवहन मंत्री राजेन्द्र गुप्ता से हमारा नम्र निवेदन है कि बसों के परिचालन में हुई इस धांधलीभरी बंदर-बांट की उच्चस्तरीय जांच के आदेश देकर भ्रष्टाचार उन्मूलन की दिशा में सार्थक पहल करें। ग्रामीण यात्रियों के साथ यह कैसा इंसाफ है जब कोई भी प्राइवेट आपरेटर अपनी बसों को ग्रामीण रूटों पर चलाने के लिए तैयार नहीं है।

—जयभगवान भारद्वाज, घोगा, दिल्ली-39

सब्जी का सर्वधर्म सम्मेलन

यह महंगाई की खाई यदि शीघ्र न भर पाई तो ऐसी घड़ी आ जाएगी कि महिला सब्जीफरोश के हाथ में थमा थैला इधर-उधर घुमा नजरें झिझकती कहेगी 'रे भैया देर ना कर जल्दी तौल हाफ-हाफ पीस आलू, प्याज, टमाटर और वह जो है डाल दे प्रत्येक एक-एक पीस निगोड़ी भिंडी, अरबी और मटर की फली। घीया बैंगन तोरी भी चल कर दे हाफ-हाफ सेंटीमीटर।' सब्जीवाला भौचक्का हो बोलेगा 'बहन जी यह कहीं कब्जी का नुस्खा तो नहीं? क्या आप इनकी सब्जी बनाएंगी? किस-किस को खिलाएंगी? सुन महिला झल्लाएगी 'मूंआ... आ सब्जी नहीं बनाऊंगी तो क्या मैं इनका 'सर्व-धर्म-सम्मेलन' करवाऊंगी?

—राजेन्द्र शर्मा, 84-अर्बन एस्टेट-II, हिसार

करे कोई, भरे कोई

तेल या अन्य वस्तु जिसको दैनिक प्रयोग किया जाता है, पर प्रतिबंध लगाने का तरीका ऐसा होना चाहिए कि जनता भी परेशान न हो। दोषी को सजा हिन्दुस्तान में कमी नहीं मिलती। मिलती है बेकसूरों को।

तेल में मिलावट का दोषी कालिटी कंट्रोलर है जो इन्हें बाजार में बेचने से पहले बिना टेस्ट बेचने की इजाजत देता है।

—ब्रिजेश, किलोई (रोहतक), हरियाणा

मौत वापस आ गई

इस ओर दिल्ली उच्च न्यायालय तक ने ध्यान नहीं दिया कि दुर्घटनाओं से बचने के लिए इस महानगर में बसों का नियंत्रण में चलना आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऊपर के लोग जनसामान्य को भेड़-बकरियों से ज्यादा कुछ नहीं समझते। अन्यथा ब्लू लाइन बसों के विषय में यह निर्णय बिल्कुल नहीं होता कि उन्हें दिल्ली की सड़कों पर बिना किसी नियंत्रण के चलने की खुली छूट दी जाये। बेशक हमें पिछले महीनों में ब्लू लाइन बसों की हड़ताल के कारण परेशानी हुई है लेकिन बसों के कारण होने वाले दुर्घटनाएं अवश्य कम हुई हैं।

इस महानगर में दो-दो सरकारों के रहते 'सत्रह सौ' ब्लू लाइन बसें मृत्यु का खेल खेलने दिल्ली की सड़कों पर फिर आ गई हैं। यातायात मंत्री एवं मुख्यमंत्री जी चुप हैं। उन्हें तो शिलान्यास और उद्घाटन से ही फुर्सत नहीं मिलती है। अन्यथा न्यायसंगत बात तो यही थी और है कि ब्लू लाइन बसों को भी डी.टी.सी. बेड़े के अन्दर ही नियमों द्वारा चलाने की आज्ञा मिलती।

—राजेन्द्र नटखट, दिल्ली

ऊपर वाले की माया

ऊपर वाले की अजीब माया है जिस सरसों के तेल को लोग खाते और सिर में लगाते थे, उसी के इस्तेमाल से आज घबरा रहे हैं।

—डा. दिलशाद अहमद, लाल मस्जिद, देवबंद

लोकवाणी

छेड़छाड़ एंज्वाय करने की चीज

रानी मुखर्जी ने 'हिन्दुस्तान' को बताया कि छेड़छाड़ जीवन का रोमांटिक हिस्सा है। यकीनन सही भी है। छेड़छाड़ गुदगुदाने वाला अनुभव है, यदि उसमें तनिक भी अश्लीलता न हो तो...।' उन्होंने कहा कि सर्वे कीजिए क्या सचमुच लड़कियों को छेड़खानी बुरी लगती है। बेशक बुरी नहीं लगती? बल्कि लड़कियों का अंतर्मन तो चाहता है उन्हें कोई छेड़े। पर दिखावटी तौर पर कहती हैं, 'नहीं जी हमें बिल्कुल अच्छा नहीं लगता?' पर जिन्हें कोई छेड़ता नहीं उनकी तकलीफ कभी महसूस करके देखिए वे हीन भावना से ग्रस्त होती हैं। छेड़छाड़ कोई मुद्दा नहीं कि उस पर बहस की जाये पर मजाक तो जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। हल्की-फुल्की, गुदगुदाती छेड़खानी प्यारा अहसास है पर अमर्यादित, अश्लील भाषी छेड़छाड़ कत्तई जीवन का हिस्सा नहीं है। फिलहाल अश्लीलता समाज पर हावी होती जा रही है जो कि चिन्ता का विषय है। निश्चत रूप से फिल्मों में डिमांड के अनुरूप हीरोइनें ड्रेस पहनती हैं वास्तविक जीवन में लड़कियां यदि वैसी पोशाक धारण करती हैं तो शर्म महसूस होती हैं। हर कोई सुंदर व आकर्षण नजर आना चाहती है इसके मायने यह हरगिज नहीं कि अमर्यादित पोशाक में ही सुंदर दिखा जा सकता है। साफ सुथरा माहौल व सभ्य ड्रेस द्वारा ही स्वच्छ छेड़छाड़ को एंज्वॉय किया जा सकता है।

—आशा वर्मा, के-72, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-23

प्याज की पालिटिक्स

मियां प्याज आज फिर नाज नखरे करने लगा है अपने बदबूई बदन पर अर्थात उसके भाव का स्वभाव इस कदर बिगड़ गया कि कांग्रेसी नेताओं के हाथ में रोहतक (हरियाणा) में तराजू-बट्टे थमा दिए। वह बेचारे आलू-प्याज की सेल कर रहे हैं। अपनी बची-खुची इमेज को तोलकर देख रहे हैं। यह प्याज भी पूरा पोलिटिशियन लगता है। पहले जनता पार्टी के काल में इसके भाव ने ऐसे ताव खाए कि सत्ता का ही पत्ता काट कर रख दिया। फिर इस पाजी का मिजाज कुछ नोरमल हुआ। गुजराल के काल में भी एब नोर्मल होकर संयुक्त मोर्चे की टॉय बुलवा दी। पुनः भाव का स्वभाव शांत हुआ और फिर पुनः अशांत होकर अटल जी पर नजरें अटका रखी हैं। कम्बख्त बिल्कुल विशुद्ध ललिता श्री जी के नक्श-औ-कदम पर चल रहा है। इन दोनों में अन्तर है तो केवल इतना कि देवी जी तो प्रतिदिन स्नान करती हैं पर यह मुंआ कभी नहाता ही नहीं तभी तो दूर से ही दुर्गन्ध फेंकता है।

—राजेन्द्र शर्मा, 84-अर्बन एस्टेट-II हिसार

हिन्दुस्तान

नई दिल्ली, सोमवार, 24 मई 1999

प्रसंगवशः

आलोक मेहता

सुपर-6 की लड़खड़ाती उड़ान

भारत को विश्व के सुपर 6 देश की श्रेणी में पहुंचाने का दावा करने वाली भारतीय जनता पार्टी के सत्ता काल में एयर इंडिया की अपेक्षा विदेशी विमान सेवाओं की कमाई भारतीय मार्गों पर कई गुना बढ़ गई। प्रवासी भारतीयों समेत भारत आने वाले विदेशी पर्यटकों की संख्या में भारी कमी हुई। हां, भारतीयों का विदेशी प्रेम अधिक उमड़ा। विशेष रूप से स्वदेशी का नारा देने वाले संघ की पृष्ठभूमि वाले जितने लोग इन तेरह महीनों में विदेश गए हैं, पिछले पचास वर्षों में नहीं गए। आडवाणी जी के गृह मंत्रालय के कंप्यूटर में इसका पूरा विवरण मिल सकता है। भारत के निर्यात में गिरावट हुई, लेकिन आर्थिक प्रतिबंधों के बावजूद आयात में कमी आई। अस्थिरता और अशान्ति के कारण भारत आने-जाने वालों और इसके साथ दूरगामी व्यापारिक सौदे की इच्छा रखने वालों को फैसला करने में दुविधा होना स्वाभाविक है। सरकारी प्रचार-तंत्र भले ही प्रचार करता रहे कि कश्मीर में पर्यटन के दिन लौट आए हैं। लेकिन श्रीनगर-लेह मार्ग पर दिन-रात पाकिस्तान की ओर से हो रही गोलाबारी की खबरें पश्चिमी समाचार माध्यमों में बराबर उछलती हैं तथा विदेशी पर्यटक मौत के मुंह में जाने की इच्छा क्यों जताएंगे? भारतीय पर्यटन उद्योग से जुड़े लोगों का मानना है कि अपनी शाखाओं में प्रतिदिन 'मातृभूमि' का जयगान करने वालों ने सत्ता में आने के बाद इसे पर्यटकों का स्वर्ग बनाने की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी या गोआ से लेकर इटानगर तक पर्यटकों की सुख-सुविधाओं में बढ़ोतरी के लिए कोई बड़ा कदम नहीं उठाया गया। अरुणाचल, हिमाचल और उत्तरांचल क्षेत्रों में कई ऐसे मनोहारी स्थल हैं, जो स्विट्जरलैंड सहित यूरोपीय देशों के पर्यटन स्थलों से अधिक सुन्दर हैं। लेकिन भारत में कितने अन्तरराष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं, जो इन क्षेत्रों में अन्तरराष्ट्रीय पर्यटकों को जल्द पहुंचाने की सुविधा दे सकते हैं? संघ प्रशिक्षित अनन्त कुमार की कृपा से बिगड़े एयर इंडिया ने फ्रेंकफर्ट, रोम, अम्स्टर्डम् जैसे हवाई अड्डों से उड़ानें बन्द कर दीं। बांग्लादेश की छोटी सी कंपनी 'विमान' यूरोपीय समुदाय के प्रमुख नगर ब्रुसेल्स को छूती है या एक-डेढ़ करोड़ की आबादी वाले छोटे-छोटे देशों की विमान कंपनियां भारतीय हवाई अड्डों का उपयोग कर करोड़ों डालर प्रति वर्ष कमा रही हैं, लेकिन भाजपा सरकार ने कोई नई पहल नहीं की। सच बात तो यह है कि कश्मीर हो या उत्तरांचल अथवा पूर्वोत्तर क्षेत्र, उग्रवादियों को स्थानीय युवकों के समर्थन के मूल कारण को सत्तारूढ़ राजनीतिक दलों ने कभी नहीं समझा। पहाड़ से हजारों लोग रोजगार के लिए दिल्ली, मुम्बई जैसे महानगरों की ओर चले जाते हैं। जो पारिवारिक कठिनाइयों से वहीं रहते हैं, उनके लिए काम-धंधा, जमीन-जायदाद की गुंजाइश नहीं रहती। दिग्भ्रमित युवा पहले गली-मोहल्ले में दादागिरी करते हैं, फिर हथियार का सहारा लेने लगते हैं। यदि इन इलाकों में हवाई अड्डे हों, होटलों और मनोरंजन केन्द्रों की सुविधाएं हों और हजारों पर्यटक आते-जाते रहें, तो क्या इन युवकों को स्वत: रोजगार नहीं मिल जाएगा। जो पर्यटक नेपाल, भूटान जा सकते हैं, क्या अच्छी सुख-सुविधा के साथ अधिक आकर्षक पर्यटन स्थल होने पर मिजोरम, मेघालय, अरुणाचल, मणिपुर नहीं आ सकते हैं? अरुणाचल प्रदेश के पूर्व सांसद लाइता उम्ब्रेई और भारतीय पर्यटन व्यवसाय के संगठनों के प्रमुख सुभाष गोयल के दावे पर भरोसा किया जाए तो अकेले पर्यटन उद्योग में भारत के दस करोड़ लोगों को रोजगार मिल सकता है। दुनिया के किसी भी हिस्से में पर्यटन की इतनी अपार गुंजाइश नहीं है। गढ़वाल-कुमायूं क्षेत्र में राजनीतिक और ठेकेदारी आग तो बराबर लगाई जाती है, लेकिन इस क्षेत्र को विकसित करने के लिए गंभीर प्रयास नहीं किए जाते। डा. मुरली मनोहर जोशी भारतीय संस्कृति के पुजारी हैं, लेकिन इलाहाबाद, वाराणसी, गंगोत्री-जमुनोत्री को सुन्दर बनाने, पुरातत्व के क्षेत्र में हुई उपलब्धियों को सजाने-संवारने में क्या कोई कदम उठाया गया? हरिद्वार की गंगा या इलाहाबाद के संगम में बढ़ रही गन्दगी को रोकने के लिए भी ठोस प्रयास नहीं हुए। साध्वी उमा भारती खजुराहो क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं, लेकिन छतरपुर-खजुराहो को गौरवशाली पर्यटन केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने कोई पहल नहीं की। पुरी के समुद्र तट का मुकाबला स्पेन या फ्रांस के समुद्री तट नहीं कर सकते। लेकिन धर्म के नाम पर पुरी के समुद्र तट पर लुटेरों और भिखमंगों की भीड़ पर्यटकों को नोचने के लिए उमड़ती है और सरकार मूक दर्शक की भूमिका निभाती है। बिहार के नालन्दा और राजगीर को अन्तरराष्ट्रीय पर्यटन केन्द्र कहा अवश्य जाता है, लेकिन भारत सरकार श्राद्ध कर्म की तरह एक-दो वार्षिक आयोजनों के अतिरिक्त इस क्षेत्र को विकसित करने के लिए कुछ नहीं कर सकी। मध्य प्रदेश के भेड़ाघाट या कान्हा वन क्षेत्र को दुनिया के पर्यटकों के लिए सुविधाजनक बनाने की दिशा में भारत सरकार ने कोई प्रयास नहीं किया। मजेदार बात यह है कि केन्द्र या राज्य सरकारों में पर्यटन विभाग को दोयम दर्जे का मानते हुए अन्य विभागों के साथ जोड़-जाड़कर किसी व्यक्ति को सौंपा जाता है। मंत्री केवल सरकारी अतिथियों के 'स्वागती नेता' की भूमिका निभाते हैं। नाममात्र का बजट होने से केवल प्रशासनिक खर्च का इंतजाम हो पाता है। गुजरात, महाराष्ट्र, केरल में पिछले दशक तक हुए पर्यटन विकास के बाद सेवाएं सुधरने की अपेक्षा बिगड़ी हैं।

राजस्थान में जोधपुर, उदयपुर, जैसलमेर पर्यटन की दृष्टि से अपार संभावनाएं रखते हैं। भाजपा के नेताओं को राजस्थानी पगड़ी पहनकर तस्वीर खिंचवाना बहुत भाता है, लेकिन केन्द्र में सत्तारूढ़ होने के बाद इस पगड़ी की शान बढ़ाने की दृष्टि से जोधपुर, उदयपुर या जैसलमेर में अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा बनाने की योजना तक नहीं बनाई गई। इटली के रोम या वेनिस शहर में सात-साठ सौ वर्ष पहले बनी इमारत को दिखाने के नाम पर करोड़ों डालर कमा लिये जाते हैं। भारत में पांच-सात हजार वर्ष पुरानी गुफाओं का उपयोग किया जाए, तो हजारों नये पर्यटक आ सकते हैं। जैसलमेर की तुलना में दुबई या ओमान में कुछ भी देखने लायक नहीं है। लेकिन भारतीय नेताओं और अधिकारियों को दुबई के लिए हवाई सेवाएं बढ़ाने की चिंता अधिक रहती है। भारत के पर्यटन केन्द्रों पर अच्छी पुस्तकों, पत्रिकाओं, फिल्मों की बेहद कमी है। इस क्षेत्र में विदेशियों ने अधिक काम किया है। दिल्ली या मुम्बई की 'बुक शॉप' में भारतीय पर्यटन केन्द्रों की जानकारी देने के लिए विदेशी लेखकों और प्रकाशकों की पुस्तकें अधिक मिलती और बिकती हैं। भारत सरकार के प्रकाशन अधकचरे और मात्र आंकड़ों पर आधारित होते हैं। पर्यटन या विदेश मंत्रालय पक्षपातपूर्ण ढंग से वीडियो फिल्में बनवाकर अपने अधिकारियों की दराजों में रखवा देता है। कुछ करोड़ का बजट कहां जाता है, कोई नहीं जानता। पिछले वर्षों के दौरान जो फिल्में बनीं, वे कहां दिखाई गईं, इसका उत्तर किसी के पास नहीं है। सरकारी पर्यटन संगठनों या विमान कंपनियों के लिए विदेशों में प्रतिनिधि नियुक्त करने में भाई-भतीजावाद चलता है। इसलिये भारत की छवि के बजाय कमीशन की चिंता प्रतिनिधियों को रहती है। कांग्रेस, संयुक्त मोर्चा या भाजपा की सरकारों ने अपने पसन्दीदा एजेण्ट अवश्य नियुक्त किये। उनसे भारत को होने वाले नफे-नुकसान का हिसाब नहीं लगाया। अफ्रीका में बने रंग-बिरंगे चोगे या लकड़ी के सामान पूरी दुनिया में लोकप्रिय हो जाते हैं, लेकिन भारत के गांव-कस्बे में बने रंगीन चादर, पर्दे या लकड़ी की कारीगरी को पर्यटकों तक पहुंचाने की कोई व्यवस्था ठीक नहीं है। पर्यटन केन्द्रों के आसपास कूड़ा साफ करने की व्यवस्था तक राज्य सरकारें ठीक से नहीं करतीं और हम केवल परमाणु बम के नाम पर सुपर पॉवर कहलाना चाहते हैं। बम से बड़ी ताकत है- जनता और जनता के सुख-दुख, अतीत-वर्तमान और भविष्य की चिंता किए बिना यदि कोई सरकार भारत के शक्तिशाली हो जाने की गलतफहमी पालेगी तो उसे घाटा ही होगा। बम के आतंक से आप दुनिया को प्रभावित नहीं कर सकते हैं, लेकिन प्राकृतिक सौन्दर्य और सम्पदा के बल पर पूरी दुनिया का दिल जीत सकते हैं।

फिजी में भारत मूल के लोगों की शानदार विजय

उन्नीसवीं शताब्दी में जबकि ब्रिटिश साम्राज्य में सूरज नहीं डूबता था, अंग्रेजों ने कठोर परिश्रम करके संसार के उन सभी प्रमुख देशों को खोज निकाला जहां गन्ने की खेती हो सकती थी। अपने अनुभव से उन्होंने पाया कि बिहार और उत्तर प्रदेश के मजदूर गन्ने के खेतों में काम करने के लिए सबसे उपयुक्त हैं। इसीलिए कभी डराकर, कभी फुसलाकर और कभी लालच देकर वे भारी संख्या में इन मजदूरों को गन्ने की खेती करने के लिए संसार के विभिन्न देशों में ले गये जिसमें मॉरीशस, त्रिनिडाड, ब्रिटिश गुयाना, सूरीनाम और फिजी प्रमुख थे। कई पीढ़ियों से कठोर परिश्रम करके इन भारतवासियों ने अपने को उन देशों का अंग बनाया, वहां की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में भरपूर योगदान दिया। जिसका परिणाम हुआ कि आज मॉरीशस में भारत मूल के व्यक्ति नवीनचन्द्र रामगुलाम प्रधानमंत्री हैं। यही नहीं, वहां के राष्ट्रपति कासम उत्तीम भी भारतवंशी ही हैं। मॉरीशस के पूर्व प्रधानमंत्री अनिरुद्ध जगन्नाथ भी भारतवंशी ही थे। कैरेबियाई देश त्रिनिडाड और टोबैगो में भारत मूल के व्यक्ति वासुदेव पांडेय प्रधानमंत्री हैं और उस देश के राष्ट्रपति नूर हसन अली भी भारतवंशी ही हैं। ब्रिटिश गुयाना के पूर्व प्रधानमंत्री छेदी जगन भारत मूल के ही थे। यही नहीं, सिंगापुर के पूर्व राष्ट्रपति देवेन नायर भी भारत मूल के ही थे। मलेशिया और सिंगापुर में रबड़, चाय और कॉफी के बागानों में काम करने के लिए भारत से भारतीय मजदूर अंग्रेजों द्वारा ले जाए गये थे जो अन्तत: वहीं बस गये। परन्तु फिजी की कहानी अन्य देशों से कुछ भिन्न है। 96 वर्षों तक ब्रिटेन का उपनिवेश बने रहने के बाद फिजी को 1970 में आजादी मिली। कहते हैं कि 1874 में जब अंग्रेज प्रशांत महासागर के उन छोटे-छोटे द्वीपों पर उतरे जिन्हें आज फिजी कहते हैं तो उन्हें यह देखकर घोर हैरानी हुई कि फिजी के मूल निवासी एकदम जाहिल थे और बाहर की दुनिया से उनका कोई संपर्क नहीं था। अंग्रेजों ने उन्हें पश्चिमी तरीके से रहना सिखाया। परन्तु फिर भी उनके रहन-सहन में बहुत बदलाव नहीं आया। यूरोप के कुछ विद्वानों ने फिजी पर जो शोध किया है, उनका कहना है कि जब अंग्रेज फिजी आये तब फिजी भयानक जंगलों से भरा पड़ा था। वहां के मूल निवासी इतने जंगली और हिंसक थे कि बाहर से आये हुए लोगों को देखते ही उन पर टूट पड़ते थे और उनकी जान ले लेते थे। भारत से जो भारतीय फिजी में गन्ने की खेती करने के लिए अंग्रेजों द्वारा ले जाये गये उन्हें उस देश में असीम-सी मुसीबतों का सामना करना पड़ा। 1970 में अंग्रेजों ने स्थानीय फिजी निवासियों, जिनमें भारतीय अधिक थे, के दबाव और विश्व जनमत के दबाव में आकर फिजी को आजादी तो दे दी परन्तु मूल फिजी निवासियों और भारतवंशियों में भयानक कटुता भी पैदा कर दी। संसार में सब जगह अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई और उसी के बल पर सैकड़ों वर्ष टिके रहे। जिस समय अंग्रेजों ने फिजी को आजाद किया उस समय फिजी में भारतवंशियों की जनसंख्या मूल फिजी निवासियों की तुलना में अधिक थी। एक अनुमान के अनुसार उन दिनों भारतवंशियों की संख्या प्राय: 54 प्रतिशत थी और मूल फिजी निवासियों की लगभग 45 प्रतिशत। शेष जनसंख्या में यूरोप और चीनी मूल के लोग थे। अंग्रेजों ने मूल फिजीवासियों को समझाया कि भारतवंशी लोग फिजी के मूल नागरिक नहीं हैं और ये मूल फिजी निवासियों का शोषण कर रहे हैं। अत: मूल फिजी निवासियों को संगठित होकर भारतवंशियों को फिजी से खदेड़ने का प्रयास करना चाहिए। यह बात सितिबेनी राबुका नाम के एक फौजी अफसर के मन घर कर गई। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि राबुका की ट्रेनिंग देहरादून की मिलीटरी एकेडमी में हुई थी, जहां उसने एक शोध ग्रंथ लिखा था कि किस प्रकार कोई दृढ़ निश्चय वाला सैनिक अफसर देश में सैनिक क्रांति करा कर सत्ता हथिया सकता है। उस समय उसके मित्रों ने देहरादून में उससे पूछा था, 'क्या तुम अपने देश में ऐसा ही करोगे'? इस पर राबुका ने हंसकर कहा था, 'भविष्य को किसने देखा है? हो सकता है मैंने जो कुछ लिखा है उसका प्रयोग अपने देश में करूं।' उस समय लोगों ने हंसकर राबुका की बात टाल दी थी। उस समय कोई भी यह अन्दाज नहीं लगा पाया कि राबुका के मन में कौन सी आग जल रही है? मई, 1987 में फिजी में आम चुनाव हुआ जिसमें भारतवंशियों को बहुमत मिला और उनकी सरकार बनी। परन्तु रातोंरात राबुका ने सैनिक विद्रोह करके उस सरकार को उखाड़ फेंका और अधिकतर मंत्रियों को जेल में डाल दिया। वह स्वयं शासनाध्यक्ष बन बैठा। राबुका के इस कदम का सारी दुनिया में घोर विरोध हुआ। यहां तक कि फिजी को कॉमन वेल्थ से बाहर निकाल दिया गया। राबुका ने 1990 में एक ऐसा संविधान बनाया जिसमें भारतवंशियों को देश में 'द्वितीय श्रेणी' का नागरिक करार दिया गया। यही नहीं, राबुका ने भारतवंशियों पर तरह-तरह के अत्याचार शुरू कर दिये। परिणामस्वरूप भारत मूल के लोग धीरे-धीरे फिजी छोड़कर बहुत बड़ी तादाद में आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और कनाडा चले गये। आज फिजी में भारतवंशियों की संख्या 47 प्रतिशत है।

1992 में राबुका ने देश में चुनाव कराया और एक बार फिर वह देश के प्रधानमंत्री बन बैठे। [illegible] लिया। [illegible] वकील, [illegible] संख्या में फिजी छोड़ गये। [illegible] फिजी [illegible] खेती [illegible] रहेगी। [illegible] उपज [illegible] को देना [illegible]

राबुका [illegible] में रहने [illegible] विरुद्ध [illegible] के मूल [illegible]

मंथन

डॉ. गौरीशंकर राजहंस

खेतिहर [illegible] गन्ने [illegible]

फिजी [illegible] जमींदार [illegible] जो गन्ने [illegible] जाते। [illegible] पड़ा। [illegible] की खेती [illegible] पर आश्रित [illegible] फिजी [illegible] जनता, [illegible] दाने-दाने [illegible] अधिकतर [illegible] रहे थे। [illegible] फिजी [illegible] राबुका [illegible] बढ़ते हुए [illegible] उसने [illegible] कमेटी [illegible] अपनी [illegible] संविधान [illegible] राबुका [illegible] में नये [illegible] ने ब्रिटेन [illegible] व्यक्तिगत तौर से इस बात के लिए माफी मांगी कि 1987 में उसने सैनिक क्रांति करके फिजी की निर्वाचित सरकार को अपदस्थ कर दिया था। [illegible]

[illegible] अगले कुछ वर्षों में यह संख्या बढ़कर लाखों तक [illegible] हिम्मत नहीं कर सके।

21वीं सदी

मनोहर श्याम जोशी

कृपया अपने दिमाग को बेकार तकलीफ न दें!

यह तब की बात है जब राजीव गांधी ने भारत को इक्कीसवीं सदी की ओर ले जाने की मुहिम नहीं छेड़ी थी और कंप्यूटर के उपयोग के बारे में मैंने बस सुना और पढ़ा ही था। तत्कालीन पश्चिम जर्मनी सरकार के निमंत्रण पर मैं जर्मनी का दौरा कर रहा था। मेजबान संस्थान के कर्मचारी के साथ मैं राजधानी बॉन में विमान सेवा कार्यालय में यह जिज्ञासा लेकर पहुंचा कि जो टिकट मुझे दिया गया है क्या उसी में मुझे लंदन जाने की भी सुविधा दी जा सकती है?

वहां कंप्यूटर के मानीटर के आगे बैठी अपने नाखूनों पर लगायी बैंगनी पालिश फूंक मारकर सुखाती हुई सुंदरी ने मेरा सवाल सुनकर बगैर कुछ कहे अपना की-बोर्ड खटखटाया और मानीटर देखा। बोली, 'सरकारी टिकट है, सरकार की मंजूरी चाहिए।' मेजबान संस्था के नुमाइंदे ने तुरन्त मंजूरी दी। सुन्दरी ने फिर कंप्यूटर को खटखटाया और बोली, 'हां इसी टिकट पर लंदन जा सकते हैं।' मैंने कहा, 'तो ऐसी व्यवस्था कर दीजिए कि मेरी जर्मनी यात्रा समाप्त होने पर मैं लंदन जा सकूं।' सुंदरी बोली, 'ठीक है तो मैं आपके टिकट पर फ्रेंकफर्ट-लंदन-फ्रेंकफर्ट जोड़ देती हूं। बस यह बता दीजिए आप लंदन कितने दिन रहना चाहेंगे?' मैंने बताया, उसने कंप्यूटर खटखटाया।

अब कंप्यूटर का मानीटर देखकर वह बोली, 'आपकी जर्मनी यात्रा तो म्यूनिख में ही खत्म होने वाली है। फ्रेंकफर्ट तो सिर्फ दिल्ली का हवाई जहाज पकड़ने जाना है। आप म्यूनिख से ही लंदन चले जाएं।' मैंने कहा, 'ठीक है'। उसने फिर कुछ टाइप किया, मानीटर देखकर बोली, 'म्यूनिख से आप सुबह की फ्लाइट में जाना चाहेंगे कि शाम की?' मैंने कहा, 'शाम की'। उसने यह सूचना कंप्यूटर में भरी तो कंप्यूटर ने मेरा नाम म्यूनिख-लंदन वाली फ्लाइट में डाल दिया और फ्रेंकफर्ट से दिल्ली का हवाई जहाज पकड़ने के लिए लंदन-फ्रेंकफर्ट फ्लाइट में भी।

यह सब देखने के बाद मुझे लगा कि अगर यह महिला अपना दिमाग घर ही छोड़ आती तो कोई फर्क नहीं पड़ता, बल्कि बेहतर ही रहता। इसने अपने दिमाग से एक ही फैसला किया था- मुझे फ्रेंकफर्ट से लंदन भेजने का। और वह फैसला बिलकुल गलत था। तब मैंने कल्पना की कि अगर कंप्यूटर हमारी आवाज समझ सकता होता तो वह सीधे ही टिकट काटकर दे देता, इस महिला की यहां जरूरत ही नहीं पड़ती। आज कई वैज्ञानिक इंसानी आवाज को समझ सकने वाला और बोले हुए निर्देशों का पालन कर सकने वाला और जरूरत पड़ने पर आपसे बात कर सकने वाला कंप्यूटर बनाने में जुटे हुए हैं और इस दिशा में थोड़ी प्रगति भी हो चुकी है। काफी विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अगली सदी में ऐसे कंप्यूटरों का चलन आम हो जाएगा जिन्हें टाइप करके निर्देश देने के लिए किसी व्यक्ति को नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

जर्मनी से लौटने के कुछ साल बाद मैंने विद्वानों की एक सभा में यह किस्सा सुनाते हुए कहा कि कंप्यूटर क्रांति एक औसत इंसान के एक औसत मस्तिष्क की क्षमता को उतना ही अनुपयोगी बना देगी जितना कि औद्योगिक क्रांति शारीरिक श्रम को बना चुकी है। इस पर एक जानकार ने कहा कि वह तो पंडितों के दिमाग को भी अनुपयोगी बना देगी। उन्होंने बताया कि मेरे अपने क्षेत्र- हिन्दू मंदिरों का वास्तु शिल्प- का सबसे बड़ा पंडित एक अमरीकी विश्वविद्यालय का एक्सपर्ट सिस्टम है। उसका एक्सपर्ट सिस्टम इस दिशा के देश-विदेश के सारे पंडितों का ज्ञान और अनुभव उनकी किताबों में से लिया गया और उनसे साक्षात्कार करके बटोरा गया। तो जाहिर है कि वह एक्सपर्ट सिस्टम पंडितों का भी पंडित बना।

इस तरह के एक्सपर्ट सिस्टम ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र में बन चुके हैं और बन रहे हैं। एक्सपर्ट सिस्टम पंडितों से बेहतर है क्योंकि उसकी याददाश्त ज्यादा पक्की है, वह कभी मरने वाला नहीं है और उसके ज्ञान में नयी खोजों के अनुसार आवश्यक संशोधन और परिवर्धन किया जाता रह सकता है।

उधर, पंडितों का ऐसा है कि ज्ञान विस्फोट के इस दौर में वे बड़ी तेजी से आउट आफ डेट होने लगते हैं। उनका अनुभव भी बेकार हो जाता है। यह देखा गया है कि चिकित्सा तक में एक्सपर्ट सिस्टम अपने क्षेत्र के औसत डाक्टरों से कहीं बेहतर साबित होते हैं और जाने-माने विशेषज्ञ से भी वैसी ही टक्कर ले सकते हैं जैसी शतरंज खेलने वाले कंप्यूटर ने विश्व चैम्पियन कास्परोव से ली थी।

आज भी यह स्थिति तो आ ही गयी है कि नयी जानकारी रखने वाले बेटे तजुर्बेकार बाप से कहते हैं कि आप चुप रहिए, हमें करने दीजिए। वह दिन दूर नहीं जब कंप्यूटर इंसानों से कहेगा कि आप सब चुप रहिए, हमें करने दीजिए। बीसवीं सदी ने जो दुनिया बनायी है उसमें रुपइया, बाप और भैया से सचमुच बड़ा है। सस्ते पड़ने और बेहतर साबित होने वाले कंप्यूटर तेजी से इंसानी दिमाग की जगह जीवन के हर क्षेत्र में लेते चले जाएंगे। आज भी आर्थिक मंडी में केवल अत्यंत मेधावी मानवीय मस्तिष्कों को भाव दिया जा रहा है। उनमें भी दो तरह के मस्तिष्कों को खासकर। पहले वे, जो बेहतर कंप्यूटर बना सकते हों या कंप्यूटरों से बेहतर काम लेने वाले साफ्टवेयर या जो आर्थिक दृष्टि से उपयोगी वैज्ञानिक खोजें कर सकते हों। दूसरे वे जो ऐसे मेधावी लोगों से काम लेना, उनके खर्चों में निगाह रखने और उनके काम का महत्व पहचानने की क्षमता रखते हों। यानी वे जो इस 'ह्यूमन रिसोर्स' का मैनेजमेंट कर सकते हों। दूसरी किस्म के दिमाग पहले किस्म के दिमाग से भी ज्यादा जरूरी मालूम होने लगे हैं।

आज भी यह स्थिति तो आ ही गयी है कि नयी जानकारी रखने वाले बेटे तजुर्बेकार बाप से कहते हैं कि आप चुप रहिए, हमें करने दीजिए। वह दिन दूर नहीं जब कंप्यूटर इंसानों से कहेगा कि आप सब चुप रहिए, हमें करने दीजिए। बीसवीं सदी ने जो दुनिया बनायी है उसमें रुपइया, बाप और भैया से सचमुच बड़ा है।

इसीलिए मैनेजरों को शोधकर्ताओं से भी ज्यादा पैसा मिल रहा है और बिजनेस मैनेजमेंट के विद्यालयों में विज्ञान और इंजीनियरिंग पढ़े हुए छात्रों को प्राथमिकता दी जा रही है।

इन दो तरह के लोगों को छोड़ बाकी लोगों का मंडी में कोई उपयोग नहीं रहेगा। तब बेचारा इंसान अपने औसत दिमाग का उपयोग घरेलू कामकाजों में ही कर पाएगा, या शायद उनमें भी नहीं। अभी कहीं पढ़ने को मिला कि अमरीका में ऐसी युक्ति खोज निकाली गयी है कि आपका फ्रिज खुद ही समझ लेगा कि कौन सी चीज खत्म हो गयी है, कितनी मंगवानी है। और उस हिसाब से आपका आर्डर दुकान पर पहुंचा देगा। सवाल यह है कि जब कंप्यूटर के प्रताप से दिमाग को जोर देने की जरूरत ही नहीं होगी तब औसत इंसान की शारीरिक क्षमताओं का वैसे ही ह्रास न होगा जैसे मशीनी युग से शारीरिक क्षमताओं का हुआ। या वैसे शरीर थुलथुले होने लगे, वैसे ही दिमाग भी थुलथुले न होने लगेंगे?

इसका जवाब इस तथ्य से ही मिल जाता है कि कंप्यूटर का सबसे ज्यादा उपयोग करने वाले देश अमरीका के छात्र 'आईक्यू' के मामले में लगभग सबसे फिसड्डी साबित होने लगे हैं। भाषा-ज्ञान और गणित के मामले में पिछड़े हुए और परम्परावादी चीन और भारत के छात्र अमरीकी छात्रों से कहीं बेहतर साबित होते हैं।

कहा जाता है कि इन और ऐसे ही अन्य पिछड़े देशों से मेधावी छात्र तगड़े वजीफे दे-देकर न बुलाए जाते रहे तो अमरीकी विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक शोध समाप्त हो जाने की नौबत आ जाए।

बीसवीं सदी के शुरू के दशकों तक में एक औसत इंसान का दिमाग कई-कई पोथियां और तमाम तरह के पहाड़े याद रख पाता था। खासे पेचीदा गणित के सवाल मुंहजबानी हल कर देते थे। बीसवीं सदी के अंत में यह स्थिति है कि जरूरी पते और फोन नंबर तक आप अपनी नहीं, इलेक्ट्रानिक डायरी की स्मृति में दर्ज करते हैं और साधारण जोड़-बाकी का काम भी केल्क्यूलेटर से करवाते हैं।

इसके चलते थुलथुले होते जाते दिमागों की सेहत सुधारने के लिए उन्नत देशों में मेंटल जिमेनेस्टिक्स यानी मानसिक व्यायाम की बात उठ चुकी है। और सहज ही यह कल्पना की जा सकती है कि इक्कीसवीं सदी में इंसान अपने गैर-जरूरी हो चुके दिमाग को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए नियम से मानसिक व्यायाम करेगा और मोहल्ले-मोहल्ले में 'दिमागी जिम' खुलेंगे। यही नहीं, मस्तिष्क की अद्भुत क्षमता प्रदर्शित करना भी प्रायोजित मनोरंजन का एक अंग बन चलेगा।

रसभंग

चश्मे पर मटका

उस महिला के सिर पर मटका था। एकदम सुन्दर मटका। थोड़ा-सा टेढ़ा। पतली कलाइयां। एक हाथ मटके के मुंह को पकड़े, दूसरे हाथ का, महज अंगूठा, मटके के तले को टेढ़ा किए हुए। कलाई पर शानदार घड़ी। घड़ी के नीचे से शुरु कुर्ती की बांह पर उससे भी शानदार डिजाइन का कट। माथे पर डिजाइनर बिंदिया। खुले होठ, मुसकाती दंतपंक्ति। गले में जबर्दस्त रंगों का मिश्रण प्रस्तुत करती चुनरी। इन सबसे ऊपर बड़ा सा रंगीन चश्मा। ध्यान से देखो तो रंगीन चश्में में से आंखें बंद-बंद सी। चेहरे पर उल्लास। कुल मिलाकर दो ही चीजें प्रधान - मटका और चश्मा। चश्मा धूप से बचाता है और मटका प्यास से। लेकिन चश्मा आकर्षक है, धूप विरोधी है। मटका टेढ़ा है, बिलकुल नायिकाओं की सत्तरवें दशक वाली मुद्रा। लेकिन मटका उठाने वाला व्यक्तित्व इसी दशक का है। मटका खाली है। कारण? यह नायिका नहीं है। यह एक पार्टी की कार्यकर्त्री है जो पानी की समस्या के विरोध में पलकें बंद किए, खूबसूरत चश्मे के ऊपर सुंदर मटके के साथ फोटो हेतु प्रस्तुत है। इसे तालाब से गगरिया और कंकरिया वाला गीत नहीं गाना।

फोटो में, बगल का एक बूढ़ा चेहरा, जिसका चश्मा नजर का है और दंतावलि में उम्र का प्रहार स्पष्ट दिखता है। वे बुजुर्ग महिला भी इस पानी विरोध का माडल है। लगती है, चश्मे पहनकर सिर पर जो मटका रखा जाना था, वह मटका बहुत सुंदर चित्रकारी से युक्त बनवाया गया। सुन्दरता और अभाव का यह अद्भुत प्रतीक राजधानी में पानी की समस्या के लिए काम में लाया गया।

फोटोग्राफर ने फोटो छापने के लिए दी, सूरत रंगीन थी, पहले पेज पर चार कालम में सजी। इससे क्या सबक मिलता है? सबक यह मिलता है कि खाली मटका सिर पर उठाने में ज्यादा ताकत नहीं लगती। दूसरे, सौंदर्यबोध के साथ अभाव के विरुद्ध ग्यापन दर्ज कराया जा सकता है। तीसरे, इस जनसमस्या को यदि सौंदर्यबोध के साथ देखा जाए तो वह समस्या प्रथम पृष्ठ पर स्थान पा सकती है।

सखि ने मटका फोड़ा। चश्मा साफ किया और बिसलरी से तीन घूंट लिए। दूसरी सखी से कहा, यार, थक गए।

सखि ने कहा, विरोध के लिए मटके फोड़ना जरुरी है। इससे सरकार को पता चलता है कि पानी नहीं है। पानी की समस्या दूर करो, वर्ना खाली मटके फूटेंगे।

- यशवंत व्यास

कश्मीर में बचे-खुचे आतंक का कहर

ऊषा राय

कश्मीर धरती का ऐसा स्वर्ग जहां की शांति और सुरक्षा पिछले दस सालों से भंग है। श्रीनगर में विमान उतरता है और मधुर मिलन के लिए आए जोड़ों समेत पर्यटक सुकून भरे लम्हों का सपना संजोए होते हैं। लेकिन डल झील के किसी बोट या टूरिस्ट रिसोर्ट में जाने से पहले उन्हें सुरक्षा कर्मियों की पूछताछ का सामना करना पड़ता है। पिछले दो सालों के दौरान कश्मीर की वादियों में पर्यटकों का आना-जाना बढ़ा है। उन्हें उम्मीद जगी है कि घाटी में अशांति अब अतीत की घटना है। यह सच है कि घाटी में आतंकवाद का दौर चुक गया है। पिछले सालों जैसा आतंकपूर्ण माहौल अब यहां नहीं रहा। लेकिन यह भी सच है कि घाटी से आतंकवाद अभी पूरी तरह समाप्त भी नहीं हुआ है।

श्रीनगर में सुरक्षाकर्मियों की चहलकदमी जारी है। सेना, सीमा सुरक्षा बल, सी.आर.पी.एफ. और स्थानीय पुलिस के जवान ए.के.-47 और मशीनगन जैसे घातक अत्याधुनिक हथियारों से लैस होकर शहर के सुरक्षा इंतजामों में जुटे हुए हैं। बख्तरबंद वाहनों को देखकर एकबारगी लगेगा कि आप किसी युद्ध क्षेत्र में हैं। आपके इर्द-गिर्द घूमने वाले अनेक व्यक्ति कड़ी सुरक्षा के बीच दिखाई देंगे। ऐसा माहौल तो नहीं ही है कि शहर की भीड़-भाड़ व आपाधापी से उकताए व्यक्ति को यहां सुकून मिल सके। पर्यटकों और दूसरे लोगों को शाम छह बजे तक अपने घरों व होटलों में लौट आना होता है, क्योंकि इस वक्त तक सेना और अर्द्धसैनिक बलों के जवान भी बैरकों में लौट चुके होते हैं और रास्ते सामान्य आवाजाही के लिए बंद कर दिए जाते हैं। अमूमन लोगों से भरे रहने वाले श्रीनगर के खूबसूरत पार्क शाम ढलते-ढलते वीरान हो जाते हैं। कोई परिन्दा भी पर नहीं मारता। साथ ही बिजली की कटौती के कारण सड़कें घुप्प अंधेरे में डूब जाती हैं। राज्य की आर्थिक हालत पहले से ही खस्ता है। डल झील के सामने घास के खूबसूरत गलीचों पर बने अधिकतर होटल सरकार ने सुरक्षा कारणों से अपने कब्जे में ले रखे हैं।

इनमें सरकारी अतिथियों को ठहराया जाता है। पर्यटकों के अभाव में इन होटलों की स्थिति खराब हो चुकी है। होटलों में बिछे कालीनों को जगह-जगह से कीड़ों ने खा रखा है। और उनमें से बदबू आती रहती है। इनके रसोईघरों की स्थिति किसी सड़कछाप ढाबे से बेहतर नहीं है। देखरेख न होने से होटलों के बगीचे भी उजड़ चुके हैं। पर जाड़े की रवानगी और वसंत के आगमन के साथ ही इर्द-गिर्द की अस्थिरता से बेखबर दो-चार फूल अब भी पूरी धृष्टता के साथ खिलते हैं। तमाम जलधाराओं और झरनों के बावजूद घाटी में बिजली संकट बदस्तूर जारी है। हालांकि सर्दियां तो खत्म हो चुकी थीं और मार्च से बादाम के पेड़ फूलों से लदने लगे थे। पर कोई दिन ऐसा नहीं गया जब सुबह सात से दोपहर एक बजे तक यहां बिजली की कटौती न हुई हो। ऐसा नहीं है कि सिर्फ होटलों में ही बिजली नहीं थी बल्कि पुलिस के तमाम आला अफसरों और सेना के दफ्तरों में भी बिजली नदारद रहती थी। नियमित कटौती के अलावा भी जब-तब बिजली जाती रही। जहां हम ठहरे हुए थे उस होटल ने 12 लाख रुपए का बिजली बिल नहीं चुकाया था और कंपकपी सर्दी की एक धुंधली सुबह बिजली बोर्ड ने होटल की बिजली काट दी।

इसकी वजह बकाया वसूली के लिए मुख्यमंत्री द्वारा बोर्ड को दिया गया निर्देश था। दिल्ली में बैठा राष्ट्रीय मीडिया यहां कश्मीरी पंडितों के सफाया अभियान की गंभीरता से रिपोर्टिंग कर रहा है और यही अहम मुद्दा भी है। पर श्रीनगर में चूंकि मीडिया आतंकवादियों के निशाने पर है और शायद इसीलिए सुरक्षा बलों और आतंकवादियों की बंदूकों के बीच फंसे लोगों की भावना और घाटी में व्याप्त तनाव बाहर तक नहीं पहुंचा पा रहा है। घाटी में अब मुश्किल से चार-पांच हजार हिन्दू बचे हैं। यहां से भागे कश्मीरी पंडितों के घर लौटने की उम्मीद भी अब कम ही है। पर सामाजिक अनुपात में आए इस जबरदस्त बदलाव पर राष्ट्रीय अखबारों में कुछ नहीं दिखाई देता है। कश्मीरी पंडित अब भी डरे हुए हैं और जम्मू के दड़बेनुमा शरणार्थी शिविरों में दिन काट रहे हैं। उनके बच्चे बेरोजगार भटक रहे हैं और सरकारी मदद भी नाकाफी है। दरअसल, सेना और दूसरे सुरक्षाबलों के आतंकवाद विरोधी अभियान के बाद अब आईएसआई घाटी में पिछले एक साल से फिर सक्रिय हुई है। इस बार आईएसआई के लोग करो या मरो के इरादे से आए हैं। पाकिस्तान में प्रशिक्षित कश्मीरी युवकों की (जो जिहाद या जल्दी पैसा बनाने के छलावे में आतंकवादी बन गए हैं) घुसपैठ घटी है। पर विदेशी घुसपैठियों की संख्या में तेजी से बढ़ोतरी हुई है। इधर आतंकवादियों ने पुंछ और राजौरी इलाकों में अपनी गतिविधियां तेज कर दी हैं। अब आतंकवादियों ने पुलिस को भी निशाना बनाना शुरू कर दिया है।

घाटी में हालत सामान्य होने में अभी वक्त लगेगा। चिनार फिर फलेंगे। नावें लहरों पर फिर थिरकेंगी, लेकिन दिलों के घाव तब तक नहीं भरेंगे जब तक विस्थापित कश्मीरी पंडित अपने घर वापस नहीं आते। जर्जर अर्थव्यवस्था के मद्देनजर राज्य प्रशासन को हर सर्दियों में दफ्तर जम्मू ले जाने पर एक बार फिर सोचना पड़ेगा।

हमारे यहां रहने के दौरान ही वहां ऐसी एक घटना हुई। बारामूला के पुलिस उपमहानिरीक्षक एक रोज जब रात गए घर लौट रहे थे उन पर घात लगाकर हमला किया गया। इस पुलिस अफसर के साथ सशस्त्र जवानों की दो गाड़ियां थीं। इसके अलावा वह खुद एक बुलेट प्रूफ गाड़ी में चल रहा था।

इसके बावजूद हमले में दो जवान शहीद हो गए और खुद उपमहानिरीक्षक के हाथ और सिर में चोटें आईं। कुछ समय पहले गंदेरबल थाना क्षेत्र में आतंकवादियों ने रात में पुलिस लाइन पर धावा बोल दिया और वहां रह रहे तीन पूर्व आतंकवादियों को लाइन में खड़ा करके गोली मार दी। ये पूर्व आतंकवादी अब पुलिस की मदद कर रहे थे। गंदेरबल इलाका खुद मुख्यमंत्री फारूक अब्दुल्ला के चुनाव क्षेत्र में आता है। इसी तरह एक पूर्व आतंकवादी को धमकाया गया कि अगर वह अपने परिवार की सलामती चाहता है तो आतंकवादियों के लिए काम करे। यह पूर्व आतंकवादी अब वन विभाग में काम करता है। आतंकवादियों ने गंदेरबल सैनिक स्कूल के एक वरिष्ठ सैन्य अधिकारी को अत्याधुनिक विस्फोटक उपकरण का निशाना बनाया। भाग्यवश वह बाल-बाल बच गए। लेकिन जिस जीप में वह सफर कर रहे थे, वह क्षतिग्रस्त हो गई है। ये अत्याधुनिक विस्फोटक उपकरण स्कूल की इमारतों, सड़क के किनारे सुरक्षित स्थानों पर रखे जाते हैं।

रिमोट द्वारा इनका संचालन कर आतंकवादी घाटी में विनाश का खेल-खेल रहे हैं। ऐसे बहुत से उपकरणों को सुरक्षा बल फटने से पहले ही बरामद कर चुके हैं। इस काम के लिए पुरस्कृत भी किया जा रहा है।

मुश्किल से ही कोई ऐसा दिन बीतता होगा जब घाटी में कोई बड़ी घटना न घटे। इन घटनाओं का एक दर्दनाक पहलू यह भी है कि आतंकवादियों द्वारा दिए थोड़े से पैसे के लालच में पुलिस व सेना के वाहनों पर हथगोला फेंकने वाले कुछ बच्चे अपने हाथ गंवा चुके हैं क्योंकि हथगोला छूटने से पूर्व ही उनके हाथों में फट गया। इसी तरह कुछ नागरिक आतंकवादियों द्वारा बिछाई गई बारूदी सुरंगों के फटने से अपने हाथ-पांव खो चुके हैं। दरअसल, इनमें से कुछ सुरंगें बर्फ के पिघलने से निचले इलाकों में सरक आईं। इलाके के किसानों को इस बात का अंदाजा भी नहीं था कि ये बारूदी सुरंगें उनके खेतों तक आ गई होंगी।

कई मामलों में हादसे खेतों में काम कर रहे किसानों के साथ हुए। भारतीय सेना के जवान इन मासूमों को हेलीकाप्टर से ले जाकर इलाज और कृत्रिम अंग मुहैया कराते रहे हैं।

घाटी में हालत सामान्य होने में अभी वक्त लगेगा। चिनार फिर फलेंगे। नावें लहरों पर फिर थिरकेंगी, लेकिन दिलों के घाव तब तक नहीं भरेंगे जब तक विस्थापित कश्मीरी पंडित अपने घर वापस नहीं आते। जर्जर अर्थव्यवस्था के मद्देनजर राज्य प्रशासन को सर्दियों में दफ्तर जम्मू ले जाने पर फिर सोचना पड़ेगा।

वर्ष 25; अंक 44 ; 11 अक्टूबर 1998 ; 2 रुपए

इतवारी पत्रिका

आज भी आजाद नहीं हैं वे

-उषा राय-

इस बात पर विश्वास करना कठिन तो लगता है, पर यह सच है कि 125 साल बाद भी कुछ लोग अंग्रेज जमाने का अत्याचार भुगतने को विवश हैं। 1872 में कुछ आदिवासी कबीलों को अपराधी कबीला घोषित कर दिए जाने के बाद वहां के निवासी जीवन भर के लिए ही नहीं, बल्कि पुश्त-दर-पुश्त अभियुक्त माने जाने लगे। हालांकि 1952 में इन कबीलों को अपराधी कबीला सूची से बाहर कर दिया गया, परन्तु यह विभेद उनके साथ आज भी जारी है।

जानी मानी लेखिका महाश्वेता देवी, महाराष्ट्र के आदिवासी नेता लक्ष्मण गायकवाड़ और बड़ौदा स्थित भाषा अनुसंधान केन्द्र के निदेशक जी.एन. देवी ने मिलकर इसके विरुद्ध संघर्ष शुरू किया है। इनका लक्ष्य है- इन कबीलों पर से अपराधी होने का धब्बा हटाना और उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा में लाना। इसके लिए वे अपने सहयोगियों के साथ भारत के कोने-कोने में गए और जनजाति समूहों, प्रचार माध्यमों के अधिकारियों, मानवाधिकार संगठनों और राजनीतिज्ञों से मुलाकात की। उन्होंने कल्याण मंत्री मेनका गांधी और न्यायाधीश वेंकटचिलैया से मिलकर उन्हें बताया कि 1952 में इन अपराधी कबीलों की सूची रद्द कर दिए जाने के बावजूद पुलिस और आम जनता इन्हें पैदाइशी अपराधी मानती है।

महाराष्ट्र में किए गए एक सर्वेक्षण में ये कबीले अभी भी अपराधियों की सूची में गिने जाते हैं। दूसरे प्रदेशों में भी इन खानाबदोश कबीलों पर लगातार अत्याचार होते हैं। बिना कारण उत्तेजित भीड़ इन्हें मारने पर आमादा हो जाती है। पुलिस के पाशविक अत्याचार की तो कोई सीमा ही नहीं। कबीले की स्त्रियां अक्सर यौन शोषण की शिकार बनती हैं। पुलिस का कोई भी अधिकारी कबीले की किसी भी स्त्री को जितना चाहे अपमानित कर सकता है। इन कबीलों के विरुद्ध हो रहे सामाजिक अत्याचार पर आम लोग ध्यान नहीं देते, क्योंकि पढ़े-लिखे लोगों के दिमाग में यह बैठ जाता है या बैठा दिया गया है कि पारदी, सांसी, कोरकु, लोदा, खेरिया और बेकारू कबीलों के लोग पैदाइशी अपराधी होते हैं।

15 से 20 वर्ष तक काम करने के बाद लक्ष्मण गायकवाड़ और महाश्वेता देवी ने इन कबीलों पर हो रहे अमानुषिक अत्याचार से संबंधित कई ठोस प्रमाण एकत्र किए हैं। बंगाल के पुरुलिया जिले में साबर कबीले का एक निर्दोष आदमी पुलिस की हिरासत में मार दिया गया। उसके नाम (बुद्धन) से कबीलों के ऊपर आज एक मासिक सूचना पत्र निकाला जा रहा है। उसे जिस तरह पुलिस हिरासत में मारा गया उसके बारे में महाश्वेता देवी का कहना है, 'अब समय आ गया है कि राष्ट्र इस विषय पर आत्मविश्लेषण करे।'

बुद्धन साबर पुरुलिया के अकरबैद गांव में 139 भूमिहीन लोगों के साथ रहता था। खेतों में मजदूरी करके वह दिन में पांच से दस रुपए कमा लेता था। गांव के पश्चिम स्थित बंग खेरिया साबर कल्याण समिति ने पदार्पण कर इस कबीले के लोगों को दस्तकारी सिखाना शुरू किया। इससे उनकी स्थिति सुधरने लगी। गायत्री सावित्रि सामक एक समाजसेविका की मदद से गांव में एक स्कूल खोला गया, जहां कबीले के बच्चे पढ़ाई के लिए जाने लगे। वहां उन्हें दोपहर का खाना भी मिलता था। धीरे-धीरे उनके मां-बाप भी पढ़ने-लिखने लगे।

साबर कबीले वालों की जिन्दगी में आए इस बदलाव से वहां के पुलिस वाले नाराज थे। उन्होंने साबर लोगों को सबक सिखाने का निर्णय लिया। बुद्धन साबर की उम्र केवल 30 वर्ष थी। वह अपनी पत्नी श्यामली और तीन बच्चों के साथ सुखी था। ये सभी अच्छे दस्तकार थे। महाश्वेता देवी कहती हैं, 'वे थोड़ा कमाते थे परन्तु नाचते-गाते और खुश रहते थे।'

इसी वर्ष 10 फरवरी को श्यामली और बुद्धन अपनी साइकिल पर सवार होकर किसी रिश्तेदार से मिलने जा रहे थे। उसकी साइकिल पुलिस के विद्वेष का प्रमुख कारण थी। वैसे भी पुलिस का एक अधिकारी इन लोगों के विरुद्ध अपनी क्रूरता के लिए मशहूर था। 1992 में उस पुलिस अफसर और उसके एक सहयोगी ने गांव में आधी रात को हमला करके शांति साबर को पीट-पीट कर मार डाला था और बंदूक की नोक पर उसी समय उसका दाह-संस्कार करवा दिया था।

बुद्धन को उस दिन पुलिस चौकी के पास से होकर जाना था। महाश्वेता देवी ने बताया कि पुलिस चौकी पर उस पुलिस अफसर को वे लोग वापस लाए थे, जिन्हें कबीले वालों की बढ़ती आत्मनिर्भरता खटकती थी। बुद्धन और श्यामली एक पान की दुकान पर बैठे थे तभी बिना वर्दी के चार लोग बुद्धन को घसीट कर थाने ले गए। आठ दिनों के बाद गांव में खबर आई कि पुरुलिया सदर जेल में बुद्धन ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली। समिति की सहायता से उसका शव अकराबाद ले जाकर दफना दिया गया।

इधर कलकत्ता के हाईकोर्ट में महाश्वेता देवी ने एक मुकदमा दायर करके मांग की कि बुद्धन के शव को खोद कर दुबारा उसका शव- परीक्षण किया जाए। इस बीच गांव पर छापा मारकर पुलिस ने बुद्धन के शव का दाह-संस्कार करने को कहा। गांव के लोगों ने घास-फूस के पुतले को शव कह कर जलाया। उधर बुद्धन की पत्नी ने उसके शव को अपनी झोपड़ी के अंदर दफनाया और खुद उस पर सोने लगी।

काफी जांच-पड़ताल के बाद महाश्वेता देवी को यह पता चला कि पुलिस द्वारा बेरहमी से की गई पिटाई के कारण बुद्धन मारा गया। पिछले सात वर्षों में जितनी भी डकैतियां हुई उनके लिए बेचारे बुद्धन को जिम्मेवार ठहराया गया। अकेले कमरे में उसे भूखा रख कर तरह-तरह की यंत्रणा दी गई। महाश्वेता देवी कहती हैं, 'बुद्धन की मौत का बोझ मेरे मन पर हमेशा बना रहेगा।'

ललित साबर बड़ा बाजार अंतर्गत लालगुड़ी गांव में रहता था। उसे जहां भी मजदूरी मिलती वह कर लेता। यही उसकी जीविका का साधन था। जून 1996 को बंजारा पंचायत के दो अतिप्रभावशाली सदस्य महादेव उड़ांव और मदन उड़ांव ने ललित साबर को काम के लिए बुलाया। ललित और उसकी पत्नी बिजाला वहां आए।

शेष पृष्ठ 15 पर

आज भी आजाद ...

पृष्ठ एक का शेष

उन्होंने बिना कारण ललित को पेड़ से बांध कर उसकी दाईं बांजू कुहनी के ऊपर से काट दी। सजा भुगतने वाले अभियुक्त यह समझने को तैयार नहीं कि उन्होंने क्या गलती की है। वे अपने वकील से कहते हैं, 'हमने कोई जुल्म नहीं किया।' ललित कृत्रिम अंग के सहारे अब खुद को घसीट रहा है।

असल में इन कबीलों को अधिसूचित करने का काम 1947 में ही चालू हो जाना चाहिए था, परन्तु इस पर कभी किसी ने विचार ही नहीं किया। इस कारण दो करोड़ लोगों को जन्मजात अपराधी माना जा रहा है। वार्षिक सफाई अनुष्ठान के दौरान पारदी कबीले वालों की झोपड़ियां जला दी जाती हैं। महाराष्ट्र के कोरकू कबीले में उनकी संख्या बहुत कम हो गई है। लेकिन पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र के लोगों को इसकी कोई परवाह नहीं। लक्ष्मण गायकवाड़, महाश्वेता देवी और गणेश देवी ने अभी इसके विरुद्ध लड़ाई शुरू की है।

अपनी आत्मकथा के लिए संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार प्राप्त लक्ष्मण गायकवाड़ ने कुछ दिनों पहले दिल्ली के एक चौराहे पर अखबार बेचने वाले एक लड़के से पूछा कि क्या वह पारदी है? यह सुनते ही वह लड़का और उसके साथी भाग खड़े हुए। अगले दिन उन्होंने उन्हीं बच्चों से उनकी भाषा में कहा, 'मैं भी आपकी बिरादरी का हूं। इससे बच्चों के रुख में बदलाव आया और एक गली में ले जाकर उन्होंने बतलाया कि राष्ट्रधारा में मिलने के लिए उन्हें किन-किन मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है।

अब कई प्रभावशाली व्यक्ति इन कस्बे वालों के लिए आंदोलन शुरू करना चाहते हैं। मेनका गांधी उनका प्रार्थना पत्र स्वीकार कर पुलिस अत्याचार से मुक्ति के लिए संसद में एक बिल लाने पर तैयार हैं। मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायाधीश वेंकटचिलैया, वकील राजीव धवन और मध्यप्रदेश में कबीलों के अधिकारों के जुझारू नेता बी.डी. शर्मा एवं कई अन्य लोगों ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को पेश करने के लिए एक दस्तावेज तैयार किया है। इसमें कबीलों पर अत्याचार कम करने के लिए कुछ ठोस कदम उठाने की सलाह दी गई है:-

1. इन कबीलों के बारे में पुलिस ट्रेनिंग स्कूलों में फैली भ्रामक सूचना हटाई जानी चाहिए।

2. समाज कल्याण मंत्रालय एक विशेष विभाग चालू करे, जहां इन कबीलों के बारे में नई सूची तैयार की जाए, जिससे जनगणना आयुक्त को 2001 के व्यापक प्रामाणिक सर्वेक्षण में मदद मिले।

3. ऐसे पुलिस एवं प्रादेशिक सरकारी कर्मचारियों के लिए सजा का प्रावधान हो, जो इन कबीलों को अपराधी जीवन जीने के लिए मजबूर कर रहे हैं।

4. इन कबीलों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए नई योजनाएं बनानी चाहिए।

5. संसद में ऐसा बिल लाया जाना चाहिए, जिससे अपराधी होने का जो ठप्पा इन करोड़ों निर्दोष लोगों पर लगा है उसे उनके जीवन से मिटाया जा सके।

स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद अब तो इन लोगों पर हो रहे अत्याचारों पर रोक लगानी ही होगी, तभी ये जान पाएंगे कि आजादी क्या होती है। **(उन्नति फीचर्स)**

एस-20, ग्रेटर कैलाश द्वितीय, नई दिल्ली-110048

मोहिनी गिरि

राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष मोहिनी गिरि का कार्यकाल इस महीने के अंत में खत्म हो रहा है। अपने तीन वर्षों के कार्यकाल में मोहिनी गिरि ने देशभर में घूम-घूम कर दूरदराज की महिलाओं के साथ संपर्क किया और उत्पीड़न की शिकार महिलाओं की पीड़ा सुनी। लेकिन आयोग द्वारा तैयार 293 सिफारिशों में से एक को भी लागू न करवा पाने के कारण वे असंतुष्ट हैं। आखिर क्यों सरकार राष्ट्रीय महिला आयोग की उपेक्षा करती है? राष्ट्रीय महिला आयोग क्या सिर्फ कागजी संगठन है? उनकी सफलताओं-असफलताओं एवं इच्छाओं-कुंठाओं के बारे में उनके साथ बातचीत कर रही हैं **उषा राय**

राष्ट्रीय महिला आयोग में अपने कार्यकाल का आप किस तरह मूल्यांकन करती हैं? इसे छोड़ते हुए आप संतुष्ट हैं? आयोग की अध्यक्ष के रूप में आप भारतीय महिलाओं के जीवन में कुछ सुधार ला पाई या नहीं?

आयोग से सेवानिवृत्त होते हुए मैं संतुष्ट हूं लेकिन महिलाओं की स्थिति मैं नहीं बदल पाई। मेरे पास कोई जादुई छड़ी नहीं है। परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। अब समय आ गया है कि आयोग को महिलाओं के साथ महिलाओं के लिए काम करने के बजाए पुरुषों के साथ पुरुषों के लिए काम करना चाहिए। आयोग में तीन साल तक काम करने के बाद मेरा अनुभव है कि महिलाएं पूरी तरह पुरुषों के गिरफ्त में हैं। वे खुद न चल सकती हैं, न बोल सकती हैं और न ही सोच सकती हैं। मैं उन 80 प्रतिशत महिलाओं की बात कर रही हूं, जो गांवों, आदिवासी क्षेत्रों, फूटपाथों एवं झुग्गी-झोंपड़ियों में रहती हैं।

महिलाओं की मदद के लिए आयोग ने न्यायिक साक्षरता कार्यक्रम चलाए। उन्हें प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराना सिखाया। सम्पत्ति के अधिकार और बच्चों को हासिल करने की लड़ाई लड़ने बताया। यह कार्यक्रम 80 हजार महिलाओं तक पहुंचा, जिससे वे जागृत हुईं। उनमें से कुछ आज संघर्ष कर रही हैं और अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रही हैं। परन्तु महिलाओं की सुरक्षा के लिए हमें पुरुषों की मानसिकता बदलनी होगी। यदि मुझे एक और अवसर मिलता तो मैं पुरुषों की मानसिकता बदलने पर अपना ध्यान केंद्रित करती।

कुछ लोगों का कहना है कि राष्ट्रीय महिला आयोग 'फायर फाइटिंग ब्रिगेड' है और आप उसकी 'चीफ फायर ऑफिसर' हैं। आप पर आरोप है कि आपने उन वृहत् योजनाओं पर काम नहीं किया जिनसे महिलाओं का जीवन प्रभावित होता है?

मैं आपकी बात से सहमत हूं कि हम लोग 'फायर फाइटिंग ब्रिगेड' हैं। मैंने यह ठाना कि मेरे पास जो भी महिला आए मैं उसकी मदद करूं। मानव संसाधन विकास मंत्री के रूप में माधव राव सिंधिया ने बीजिंग में एक वादा किया था कि राष्ट्रीय महिला आयोग के पास एक मजबूत जांचपरक इकाई होगी, परन्तु यह वादा पूरा नहीं किया गया।

योजनाएं जरूरी हैं परन्तु वे लंबे समय के बाद प्रभावित होती हैं। वे तत्काल महिलाओं की समस्याओं को दूर नहीं कर सकतीं। विवाह पंजीकरण बिल एवं 24 अन्य बिल महिलाओं की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण हैं, जिन्हें पिछले तीन वर्षों से ठंडे बक्से में डाल दिया गया है। लालकृष्ण आडवाणी सहित 90 मंत्रियों को मैंने इन बिलों के बारे में लिखा लेकिन कुछ नहीं हुआ।

इन बिलों को क्यों नहीं पेश किया जाता है?

ये बिल महिलाओं से संबंधित हैं और महिलाएं सरकार के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं हैं। आयोग के रूप में हमें उचित सम्मान नहीं मिलता। महिला एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के सचिव नहीं चाहते कि राष्ट्रीय महिला आयोग उनके विभाग से अधिक शक्तिशाली बने। इसी कारण देह-व्यापार के विरुद्ध आयोग ने पिछले तीन वर्षों में व्यवस्थित ढंग से काम किया, परन्तु महिला एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा इस विषय पर हाल में सार्क देशों के विशेषज्ञों की आयोजित बैठक में राष्ट्रीय महिला आयोग को निमंत्रित नहीं किया गया। बैठक में सिर्फ आयोग के सलाहकार को बुलाया गया।

आपकी बातों में कुंठा क्यों झलकती है?

वृंदावन की विधवाओं के ऊपर किए गए एक अध्ययन में पता चला कि उनमें से अधिकांश के साथ आश्रमों और सड़कों पर छेड़छाड़ होती है। आयोग ने उनके लिए वृंदावन में कम समयावधि के घर बनाने तथा उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की सलाह दी। इससे उन औरतों को न तो धक्के खाने पड़ेंगे और न ही उनकी बेइज्जती होगी। मेरा कार्यकाल पूरा हो रहा है और इस योजना का क्या हुआ मुझे पता नहीं?

इसके अलावा आयोग ने वेश्यावृत्ति की शिकार महिलाओं के बच्चों के लिए केन्द्रीय विद्यालय संगठन एवं नवोदय विद्यालयों में 5 प्रतिशत आरक्षण देने के लिए कहा। साल भर पहले ही इसे संबंध में एक सिफारिश तैयार कर महिला एवं परिवार कल्याण मंत्रालय को भेजी जा चुकी है, लेकिन आज तक उस पर कोई अमल नहीं हुआ है।

नेपाल और बंगलादेश से प्रति माह 8000 बच्चे देह- व्यापार के लिए भारत लाए जाते हैं, इसे रोकने की जरूरत है। इस संबंध में आयोग ने एक ब्यूरो का गठन कर धंधे में लगे लोगों को गिरफ्तार करने तथा बच्चों को प्रवेश कराने वाले सीमा के 14 पहचान किए गए जगहों की जांच कराने की सलाह दी है। परन्तु इसे रोकने के लिए सरकार ने अब तक कोई कदम नहीं उठाया है और मैं खुद को कुंठित महसूस कर रही हूं।

फिर भी आप कहेंगी कि आप अपने कार्यकाल में कुछ हासिल कर पाई हैं?

कुछ ऐसे मसले हैं जिन पर यदि अच्छी नीति बनी होती तो बेहतर होता। कलकत्ता, चेन्नई और तिरुपति की वेश्याओं ने मिल कर कॉ-आपरेटिव शुरू किए हैं। जब भी कोई नई बच्ची वहां लाई जाती है, तो उसका नाम दर्ज किया जाता है और उसे बचाने की कोशिश की जाती है। पुलिस उत्पीड़न से बचने के लिए उन्होंने संगठन भी बनाए हैं। डॉक्टर एवं वकील के लिए वे हर महीने पांच से दस रुपए जमा करती हैं। इससे मुक्ति के लिए हमने चित्तूर में दस महिलाओं के लिए एक एकड़ जमीन ली है, जहां वे फूलों का धंधा कर सकती हैं।

क्या आपका काम करने का अलग अंदाज है, जिसके कारण आप नौकरशाही के साथ नहीं चल पाई?

नौकरशाही की मानसिकता पूर्वनिर्धारित एवं स्थिर होती है, जिसे बदली नहीं जा सकती। वे सोचते हैं कि वे श्रेष्ठ हैं और बाकी लोग उनके मातहत हैं। एक स्वायत्त संस्था की प्रतिनिधि होने के कारण मैं उन्हें नहीं बदल सकती, लेकिन मैं उनके सामने झुक भी नहीं सकती। यह किसी खास नौकरशाह की कमजोरी नहीं बल्कि नौकरशाही व्यवस्था की कमजोरी है।

तमाम विरोधों के बावजूद आयोग काम करता रहा। हमने शिकायत कक्ष की शुरुआत की। हमारे लिए कोई बड़ा या छोटा नहीं है। मैं एक मंच पर बैठ कर यह नहीं कह सकती कि आयोग सिर्फ नीति बनाने वाली एक संस्था है। हमारे पास पिछले तीन सालों में 7500 शिकायतें आई हैं, जिनमें 6052 पर हमने कार्रवाई की है। इसका मतलब यह कि आयोग ने बहुत से परिवारों की सहायता की है। आयोग के कार्यकलाप में जब नौकरशाह मददगार साबित नहीं हुए तो मुझे गैर सरकारी संगठनों और मित्रों की मदद मिली।

आयोग में आपकी टीम कैसी थी?

मेरी टीम अच्छी थी लेकिन उनमें सभी समर्थ नहीं थीं। जो समर्थ थीं, उनके ऊपर काम का बोझ लगातार बढ़ता गया। आगे आयोग में यदि राजनीतिक नियुक्ति होती है, तो ऐसे लोगों को नियुक्त किया जाए जो राष्ट्रीय स्तर पर काम कर सके। मैं अपने कार्यकाल में संतुष्ट हूं। आयोग ने अपने पैरों पर खड़ा होना सीखा है और आगे इसे चलना सीखना होगा।

उन्नति फीचर्स

Asha,
Please give
me the addl
info to go with
the Mahasweta
Devi piece.

नईदुनिया ८ अगस्त १९९८ आरंभ

क न

राष्ट्रीय महिला आयोग अब चलना सीखे : मोहिनी गिरि

राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष मोहिनी गिरि का कार्यकाल गत महीने खत्म हो गया है। अपने तीन वर्षों के कार्यकाल में मोहिनी गिरि ने देशभर में घूम-घूमकर दूरदराज की महिलाओं के साथ संपर्क किया और उत्पीड़न एवं हिंसा की शिकार महिलाओं की पीड़ा सुनी लेकिन आयोग द्वारा तैयार २१३ सिफारिशों में से एक को भी लागू न करवा पाने के कारण वे असंतुष्ट हैं। आखिर क्यों सरकार राष्ट्रीय महिला आयोग की उपेक्षा करती है? राष्ट्रीय महिला आयोग क्या सिर्फ कागजी संगठन है? प्रस्तुत हैं उनकी सफलताओं-असफलताओं एवं इच्छाओं-कुंठाओं के बारे में उनके साथ उषा राय की बातचीत के अंश :

राष्ट्रीय महिला आयोग में अपने कार्यकाल का आप किस तरह मूल्यांकन करती हैं? इसे छोड़ते हुए क्या आप संतुष्ट हैं? आयोग की अध्यक्ष के रूप में आप भारतीय महिलाओं के जीवन में कुछ सुधार ला पाईं या नहीं?

-आयोग से सेवानिवृत्त होते हुए मैं संतुष्ट हूँ लेकिन महिलाओं की स्थिति मैं नहीं बदल पाई। मेरे पास कोई जादुई छड़ी नहीं है। परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। अब समय आ गया है कि आयोग को महिलाओं के साथ, महिलाओं के लिए काम करने के बजाए पुरुषों के साथ, पुरुषों के लिए काम करना चाहिए। आयोग में तीन साल तक काम करने के बाद मेरा अनुभव है कि महिलाएँ पूरी तरह मर्दों की गिरफ्त में हैं। वे खुद न चल सकती हैं न बोल सकती हैं और न ही सोच सकती हैं। मैं उन ८० प्रतिशत महिलाओं की बात कर रही हूँ जो गाँवों, आदिवासी क्षेत्रों, फुटपाथों एवं झुग्गी-झोपड़ियों में रहती हैं।

महिलाओं की मदद के लिए आयोग ने न्यायिक साक्षरता कार्यक्रम चलाए। उन्हें प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराना सिखाया। संपत्ति के अधिकार और बच्चों को हासिल करने की लड़ाई लड़ना बताया। यह कार्यक्रम ८० हजार महिलाओं तक पहुँचा, जिससे वे जागृत हुईं। उनमें से कुछ आज संघर्ष कर रही हैं और अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रही हैं परंतु महिलाओं की सुरक्षा के लिए हमें पुरुषों की मानसिकता बदलनी होगी। यदि मुझे एक और अवसर मिलता तो मैं पुरुषों की मानसिकता बदलने पर अपना ध्यान केंद्रित करती।

कुछ लोगों का कहना है कि राष्ट्रीय महिला आयोग 'फायर फाइटिंग ब्रिगेड' है और आप उसकी चीफ फायर ऑफिसर हैं। आप पर आरोप है कि आपने उन वृहद योजनाओं पर काम नहीं किया, जिनसे महिलाओं का जीवन प्रभावित होता है।

-मैं आपकी बात से सहमत हूँ कि हम लोग 'फायर फाइटिंग ब्रिगेड' हैं। मैंने यह ठाना कि मेरे पास जो भी महिला आए, मैं उसकी मदद करूँ। मानव संसाधन विकास मंत्री के रूप में श्री माधवराव सिंधिया ने बीजिंग में एक वादा किया था कि राष्ट्रीय महिला आयोग के पास एक मजबूत जाँचपरक इकाई होगी परंतु यह वादा पूरा नहीं किया गया।

योजनाएँ जरूरी हैं परंतु वे लंबे समय के बाद प्रभावशील होती हैं। वे तत्काल महिलाओं की समस्याओं को दूर नहीं कर सकतीं। विवाह पंजीकरण विधेयक एवं २४ अन्य विधेयक महिलाओं की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण हैं, जिन्हें पिछले तीन वर्षों से ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है। गृहमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी सहित १० मंत्रियों को मैंने इन विधेयकों के बारे में लिखा लेकिन कुछ नहीं हुआ।

संजय पांचाल

इन विधेयकों को क्यों नहीं पेश किया जाता है?

-इसलिए क्योंकि ये विधेयक महिलाओं से संबंधित हैं और महिलाएँ सरकार के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं हैं। आयोग के रूप में हमें उचित सम्मान नहीं मिलता। महिला एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अधिकारी नहीं चाहते कि राष्ट्रीय महिला आयोग उनके विभाग से अधिक शक्तिशाली बने। वेश्यावृत्ति एवं देह व्यापार के विरुद्ध आयोग ने पिछले तीन वर्षों में व्यवस्थित ढंग से काम किया परंतु महिला एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा इस विषय पर हाल में दक्षेस देशों के विशेषज्ञों की आयोजित बैठक में राष्ट्रीय महिला आयोग को निमंत्रित नहीं किया गया। बैठक में सिर्फ आयोग के सलाहकार को बुलाया गया।

आपकी बातों में कुंठा क्यों झलकती है?

-मेरे पास इसके कारण हैं। वृंदावन की विधवाओं के ऊपर किए गए एक अध्ययन में पता चला कि उनमें से अधिकांश के साथ आश्रमों और सड़कों पर छेड़छाड़ होती है। आयोग ने उनके लिए वृंदावन में कम समयावधि में तैयार होने वाले मकान बनाने तथा उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की सलाह दी। इससे उन औरतों को न तो जीविकोपार्जन हेतु धक्के खाने पड़ेंगे और न ही उनकी बेइज्जती होगी। मेरा कार्यकाल पूरा हो गया है और इस योजना का क्या हुआ, मुझे पता नहीं।

इसके अलावा आयोग ने वेश्यावृत्ति की शिकार महिलाओं के बच्चों के लिए केंद्रीय विद्यालय संगठन एवं नवोदय विद्यालयों में ५ प्रतिशत आरक्षण देने को कहा। साल भर पहले ही इस संबंध में एक सिफारिश तैयार कर महिला एवं परिवार कल्याण मंत्रालय को भेजी जा चुकी है लेकिन आज तक उस पर कोई अमल नहीं हुआ है। नेपाल और बांग्लादेश से प्रतिमाह ८ हजार बच्चे देह व्यापार के लिए भारत लाए जाते हैं। इसे रोकने की जरूरत है। इस संबंध में आयोग ने एक ब्यूरो का गठन कर देह व्यापार में लगे लोगों को गिरफ्तार करने तथा बच्चों को प्रवेश कराने वाले सीमा के १४ स्थानों की पहचान कर उन जगहों की जाँच कराने की सलाह दी थी परंतु इसे रोकने के लिए सरकार ने अब तक कोई कदम नहीं उठाया है। मैं खुद को ठगी हुई महसूस कर रही हूँ।

फिर भी आप कहेंगी कि आप अपने कार्यकाल में कुछ हासिल कर पाई हैं?

-कुछ ऐसे मसले हैं, जिन पर यदि अच्छी नीति बनी होती तो बेहतर होता। वेश्यावृत्ति को ही देखिए। कलकत्ता, चेन्नई और तिरुपति की वेश्याओं ने मिलकर को-ऑपरेटिव शुरू किए हैं। जब भी कोई नई बच्ची वहाँ लाई जाती है तो उसका नाम दर्ज किया जाता है और उसे बचाने की कोशिश की जाती है। पुलिस उत्पीड़न से बचने के लिए उन्होंने संगठन भी बनाए हैं। डॉक्टर एवं वकील के लिए वे हर महीने पाँच से दस रुपए जमा करती हैं। वेश्यावृत्ति से मुक्ति के लिए हमने [illegible] में दस महिलाओं के लिए एक एकड़ जमीन ली है, जहाँ वे फूलों का व्यवसाय कर सकती हैं।

क्या आप कहेंगी कि काम करने का आपका एक अलग अंदाज है, जिसके कारण आप नौकरशाही के साथ नहीं चल पाईं?

-नौकरशाही की मानसिकता पूर्व निर्धारित एवं स्थिर होती है, जिसे आप बदल नहीं सकतीं। वे सोचते हैं कि वे श्रेष्ठ हैं और बाकी लोग उनके मातहत हैं। एक स्वायत्त संस्था की प्रतिनिधि होने के कारण मैं उन्हें नहीं बदल सकती लेकिन मैं उनके सामने झुक भी नहीं सकती। यहाँ मैं स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि यह किसी खास नौकरशाह की कमजोरी नहीं बल्कि नौकरशाही व्यवस्था की कमजोरी है।

तमाम विरोधों के बावजूद आयोग काम करता रहा। हमने शिकायत कक्ष की शुरुआत की। हमारे लिए कोई बड़ा या छोटा नहीं है। मैं यह नहीं कह सकती कि आयोग सिर्फ नीति बनाने वाली एक संस्था है। हमारे पास पिछले तीन वर्षों में ७५०० शिकायतें आई हैं, जिनमें ६०५२ पर हमने कार्रवाई की है। इसका मतलब यह कि आयोग ने बहुत से परिवारों की सहायता की है। आयोग के कार्यकलाप में जब नौकरशाह मददगार साबित नहीं हुए, तो मुझे गैर सरकारी संगठनों और मित्रों की मदद मिली। एक विश्वविद्यालय के कुलपति की मदद से हमने काम के दौरान यौन शोषण को रोकने के लिए एक कोड ऑफ कंडक्ट का विस्तार किया। वि.वि. अनुदान आयोग अब इस कोड को सभी विश्वविद्यालयों में भेज रहा है।

क्या आयोग में आपकी टीम अच्छी थी?

-मेरी टीम अच्छी थी लेकिन उनमें सभी समर्थ नहीं थीं, जो समर्थ थीं उनके ऊपर काम का बोझ लगातार बढ़ता गया। आगे आयोग में यदि राजनीतिक नियुक्ति होती है तो ऐसे लोगों को नियुक्त किया जाए, जो राष्ट्रीय स्तर पर काम कर सकें। मैं अपने कार्यकाल से संतुष्ट हूँ। आयोग ने अपने पैरों पर खड़ा होना सीखा है और आगे इसे चलना सीखना होगा।

(उन्नति)

दैनिक जागरण ,नई दिल्ली, 22 जुलाई 1998

बातचीत

महिला आयोग पुरुषों के लिए काम करे

मोहिनी गिरि

राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष मोहिनी गिरि अपने तीन वर्ष के कार्यकाल में निरन्तर सक्रिय रहीं, पर वे आयोग द्वारा तैयार 213 सिफारिशों में से एक को भी लागू नहीं करवा सकीं। इस बारे में उनसे बातचीत कर रही हैं- *उषा राय*

राष्ट्रीय महिला आयोग में अपने कार्यकाल का आप किस तरह मूल्यांकन करती हैं? आयोग की अध्यक्ष के रूप में आप भारतीय महिलाओं के जीवन में कुछ सुधार ला पाईं या नहीं?

आयोग से सेवानिवृत्त होते हुए मैं संतुष्ट हूँ लेकिन महिलाओं की स्थिति मैं नहीं बदल पाई। मेरे पास कोई जादुई छड़ी नहीं है। परिवर्तन धीरे-धीरे होता है। अब समय आ गया है कि आयोग को महिलाओं के साथ महिलाओं के लिए काम करने के बजाय पुरुषों के साथ पुरुषों के लिए काम करना चाहिए। आयोग में तीन साल तक काम करने के बाद मेरा अनुभव है कि महिलाएं पूरी तरह मर्दों के गिरफ्त में हैं। वे खुद न चल सकती हैं, न बोल सकती हैं और न ही सोच सकती हैं। मैं उन 80 प्रतिशत महिलाओं की बात कर रही हूँ जो गांवों, आदिवासी क्षेत्रों, फुटपाथों एवं झुग्गी-झोपड़ियों में रहती हैं।

महिलाओं की मदद के लिए आयोग ने न्यायिक साक्षरता कार्यक्रम चलाए। उन्हें प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराना सिखाया। सम्पत्ति के अधिकार और बच्चों को हासिल करने की लड़ाई लड़ना बताया। यह कार्यक्रम 80 हजार महिलाओं तक पहुँचा जिससे वे जागृत हुईं। उनमें से कुछ आज संघर्ष कर रही हैं और अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ रही हैं। परन्तु महिलाओं की सुरक्षा के लिए हमें पुरुषों की मानसिकता बदलनी होगी। यदि मुझे एक और अवसर मिलता तो मैं पुरुषों की मानसिकता बदलने पर अपना ध्यान केंद्रित करती।

कुछ लोगों का कहना है कि राष्ट्रीय महिला आयोग 'फायर फाइटिंग ब्रिगेड' है और आप उसकी 'चीफ फायर ऑफिसर' हैं। आप पर आरोप है कि आपने उन वृहत् योजनाओं पर काम नहीं किया जिनसे महिलाओं का जीवन प्रभावित होता है?

मैं आपकी बात से सहमत हूँ कि हम लोग 'फायर फाइटिंग ब्रिगेड' हैं। मैंने यह ठाना कि मेरे पास जो भी महिला आए मैं उसकी मदद करूं। मानव संसाधन विकास मंत्री के रूप में माधव राव सिंधिया ने बीजिंग में एक वादा किया था कि राष्ट्रीय महिला आयोग के पास एक मजबूत जांचपरक इकाई होगी परन्तु यह वादा पूरा नहीं किया गया।

योजनाएं जरूरी हैं परन्तु वे लंबे समय के बाद प्रभावित होती हैं। वे तत्काल महिलाओं की समस्याओं को दूर नहीं कर सकतीं। विवाह पंजीकरण बिल एवं 24 अन्य बिल महिलाओं की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण हैं जिन्हें पिछले तीन वर्षों से ठंडे बक्से में डाल दिया गया है। श्री लालकृष्ण आडवाणी सहित 10 मंत्रियों को मैंने इन बिलों के बारे में लिखा लेकिन कुछ नहीं हुआ।

इन बिलों को क्यों नहीं पेश किया जाता है?

इसलिए क्योंकि यह बिल महिलाओं से संबंधित हैं और महिलाएं सरकार के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं हैं। आयोग के रूप में हमें उचित सम्मान नहीं मिलता। महिला एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के सचिव नहीं चाहते कि राष्ट्रीय महिला आयोग उनके विभाग से अधिक शक्तिशाली बने। उनकी क्षुद्रता देखिए! वेश्यावृत्ति एवं देह-व्यापार के विरुद्ध आयोग ने पिछले तीन वर्षों में व्यवस्थित ढंग से काम किया परन्तु महिला एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा इस विषय पर हाल में सार्क देशों के विशेषज्ञों की आयोजित बैठक में राष्ट्रीय महिला आयोग को निमंत्रित नहीं किया गया। बैठक में सिर्फ आयोग के सलाहकार को बुलाया गया।

आपकी बातों में कुंठा क्यों झलकती है?

मेरे पास इसके कारण हैं? वृंदावन की विधवाओं के ऊपर किए गए एक अध्ययन में पता चला कि उनमें से अधिकांश के साथ आश्रमों और सड़कों पर छेड़छाड़ होती है। आयोग ने उनके लिए वृंदावन में कम समयावधि के घर बनाने तथा उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की सलाह दी। इससे उन औरतों को न तो धक्के खाने पड़ेंगे और न ही उनकी बेइज्जती होगी। मेरा कार्यकाल पूरा हो रहा है और इस योजना का क्या हुआ मुझे पता नहीं?

इसके अलावा आयोग ने वेश्यावृत्ति की शिकार महिलाओं के बच्चों के लिए केंद्रीय विद्यालय संगठन एवं नवोदय विद्यालयों में 5 प्रतिशत आरक्षण देने को कहा। साल भर पहले ही इस संबंध में एक सिफारिश तैयार कर महिला एवं परिवार कल्याण मंत्रालय को भेजी जा चुकी है, लेकिन आजतक उस पर कोई अमल नहीं हुआ है। मैं जानती हूँ कि उनके 80 प्रतिशत बच्चे यौन व्यापार में शामिल हो जाएंगे। लड़के अपनी मां-बहनों के दलाल बन जाएंगे और लड़कियां देह-व्यापार में आ जाएंगी क्योंकि अशिक्षा के कारण उनके पास कुछ और करने का हुनर नहीं होगा।

नेपाल और बंगलादेश से प्रति माह 8,000 बच्चे देह-व्यापार के लिए भारत लाए जाते हैं, इसे रोकने की जरूरत है। इस संबंध में आयोग ने एक ब्यूरो का गठन कर धंधे में लगे लोगों को गिरफ्तार करने तथा बच्चों को प्रवेश कराने वाली सीमा पर 14 जगहों की जांच कराने की सलाह दी है। परन्तु इसे रोकने के लिए सरकार ने अब तक कोई कदम नहीं उठाया है और मैं खुद को ठगी हुई महसूस कर रही हूँ।

फिर भी आप कहेंगी कि आप अपने कार्यकाल में कुछ हासिल कर पाई हैं?

कुछ ऐसे मसले हैं जिन पर यदि अच्छी नीति बनी होती तो बेहतर होता। वेश्यावृत्ति को ही देखिए! कलकत्ता, चेन्नई और तिरुपति की वेश्याओं ने मिल कर को-आपरेटिव शुरू किए हैं। जब भी कोई नई बच्ची वहां लाई जाती है तो उसका नाम दर्ज किया जाता है और उसे बचाने की कोशिश की जाती है। पुलिस उत्पीड़न से बचने के लिए उन्होंने संगठन भी बनाए हैं। डाक्टर एवं वकील के लिए वे हर महीने पांच से दस रुपये जमा करती हैं। वेश्यावृत्ति से मुक्ति के लिए हमने चित्तूर में दस महिलाओं के लिए एक एकड़ जमीन ली है जहाँ वे फूलों का धंधा कर सकती हैं।

क्या आप कहेंगी कि काम करने का आपका एक अलग अंदाज है जिसके कारण आप नौकरशाही के साथ नहीं चल पाईं?

नौकरशाही की मानसिकता पूर्व निर्धारित एवं स्थिर होती है जिसे आप बदल नहीं सकतीं। वे सोचते हैं कि वे श्रेष्ठ हैं और बाकी लोग उनके मातहत हैं। एक स्वायत्त संस्था का प्रतिनिधि होने के कारण मैं उन्हें नहीं बदल सकती लेकिन मैं उनके सामने झुक भी नहीं सकती। यहाँ मैं स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि यह किसी खास नौकरशाह की कमजोरी नहीं बल्कि नौकरशाही व्यवस्था की कमजोरी है।

तमाम विरोधों के बावजूद आयोग काम करता रहा। हमने शिकायत कक्ष की शुरुआत की। हमारे लिए कोई बड़ा या छोटा नहीं है। मैं एक मंच पर बैठ कर यह नहीं कह सकती कि आयोग सिर्फ नीति बनाने वाली एक संस्था है। हमारे पास पिछले तीन सालों में 7500 शिकायतें आई हैं जिनमें 6052 पर हमने कार्रवाई की है। इसका मतलब यह कि आयोग ने बहुत से परिवारों की सहायता की है। आयोग के कार्यकलाप में जब नौकरशाह मददगार साबित नहीं हुए तो मुझे गैरसरकारी संगठनों और मित्रों की मदद मिली।

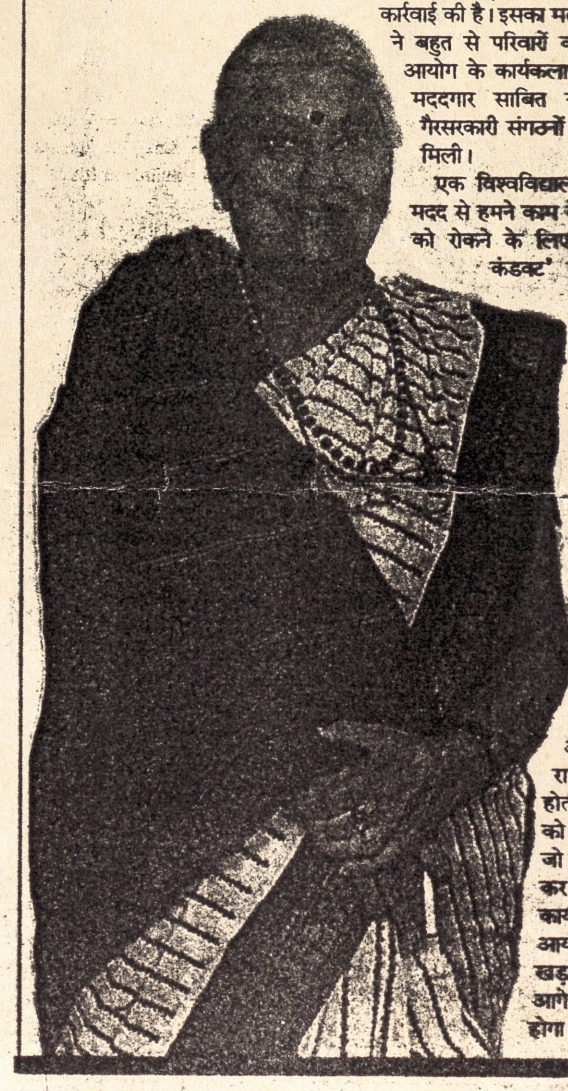

एक विश्वविद्यालय के कुलपति की मदद से हमने काम के दौरान यौन शोषण को रोकने के लिए एक 'कोड आफ कंडक्ट' का विस्तार किया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अब इस 'कोड' को सभी विश्वविद्यालयों में भेज रही है।

क्या आयोग में आपकी टीम अच्छी थी?

मेरी टीम अच्छी थी लेकिन उनमें सभी समर्थ नहीं थीं। जो समर्थ थीं उनके ऊपर काम का बोझ लगातार बढ़ता गया। आगे आयोग में यदि राजनीतिक नियुक्ति होती है तो ऐसे लोगों को नियुक्त किया जाय जो राष्ट्रीय स्तर पर काम कर सकें। मैं अपने कार्यकाल से संतुष्ट हूँ। आयोग ने अपने पैरों पर खड़ा होना सीखा है और आगे इसे चलना सीखना होगा। (उ.रा.) ❑

संजय घोष-प्रकरण

मीडिया कितना जागरुक रहा ?

उषा राय

संजय घोष के अपहरण की कहानी अखबारों की सुर्खियां बनीं और पहले पन्ने पर छपीं। इसका एक बड़ा कारण यह था कि मीडिया संजय घोष के लिए बेहद संवेदनशील और समर्थक था। पहले असमिया और फिर राष्ट्रीय अखबारों ने भी संजय घोष की खबरों को प्रमुखता से छापा। माजुली के गरीब लोगों में आशा की किरण जगाने वाला यह सामाजिक कार्यकर्ता अखबार और संचार माध्यमों से जुड़े लोगों को बहुत प्रिय था। माजुली, असम में ब्रह्मपुत्र नदी का सबसे बड़ा द्वीप है।

असम में अपहरण हर दूसरे रोज की बात हो गई है। अल्फा और बोड़ो उग्रवादी आमतौर पर फिरौती के लिए अपहरण करते हैं। इन मामलों में राज्य सरकार लापरवाह रुख बरतती है और अखबार वाले भी चंद पंक्तियां लिख कर इतिश्री कर लेते हैं। यह पहली बार हुआ कि किसी सामाजिक कार्यकर्ता के अपहरण के बाद पूरे राज्य में सनसनी फैल गई।

अल्फा का दोहरा चरित्र सामने आया है, जब उसने एक छोटे, दुबले-पतले, मृदुभाषी और सिर्फ एक बार भोजन करने वाले व्यक्ति का अपहरण कर लिया। गरीबों के साथ रहकर उनके दुख-दर्द को आत्मसात करने के लिए संजय एक बार भोजन करता था। उसका कसूर इतना भर था कि उसने विकास के जरिए आतंकवाद का सामना करना चाहा। बेरोजगार युवक कुछ हासिल करने के लिए बंदूकें उठा रहे थे। उसने उन्हें राह दिखाई थी।

इस वर्ष की पहली छमाही में अल्फा ने लखीमपुर और माजुली से तीस करोड़ रु. फिरौती के बतौर वसूले थे। उसमें जिला और ग्रामीण विकास के मद के रुपए भी शामिल हैं। जोरहाट के पुलिस अधीक्षक ने यह जानकारी दी। माजुली में जब 'अवार्ड' के कार्यकर्ताओं ने विकास राशि के बारे में पूछताछ की तो यह अल्फा और ठेकेदारों को सहन नहीं हुआ क्योंकि ठेकेदार अल्फा को पैसे देते हैं, बदले में उन्हें सुरक्षा की गारंटी मिलती है।

'अवार्ड' को उग्रवादियों और ठेकेदारों से मुश्किलें आ रही थीं, यह सबको मालूम था। लक्ष्मीचंद्र जैन, जार्ज वर्गीज, अवार्ड के अध्यक्ष श्री त्रिपाठी, नेशनल फाउंडेशन ऑफ इंडिया की निदेशिका डा. कमला चौधरी जैसे लोग संजय घोष की टीम को कुछ आर्थिक मदद प्रदान कर रहे थे। संजय के पिता शंकर घोष जो एन.एफ.आई. के कार्यकारी निदेशक थे, उन्हें भी आर्थिक मदद मिलती थी। दिसपुर के कुछ सरकारी अधिकारी, जो संजय को पसंद करते थे, उसकी समस्याओं से वाकिफ थे। जब उन्हें असम छोड़ने के लिए मजबूर किया जा रहा था, तब उन्होंने गांधीवादी रास्ता अख्तियार किया।

इस वर्ष एक जून को 'अवार्ड' ने जब माजुली में एक सार्वजनिक सभा की और समर्थन मांगा तो कई ग्रुप के लोगों ने उत्साह से उनको समर्थन दिया। लोगों ने कहा कि अवार्ड भटके हुए युवाओं को क्षमा कर दे और उन्हें अच्छे कार्य में लगाए। इस समर्थन के बाद 'अवार्ड' के उन्नीस सदस्य आश्वस्त हो गए कि लोग उन्हें अल्फा से बचाएंगे।

शुरू में मीडिया भी माजुली में तनाव और मुश्किलों के बारे में अनजान रहा। लेकिन जब संजय घोष का अपहरण हुआ तो असम मीडिया जाग उठा। जोरहाट में खासतौर से लोगों में चेतना जगी। 'जन्मभूमि' और 'क्लेरियन' अखबारों में एक महीने तक पहले पृष्ठ पर इससे संबंधी खबरें छपती रहीं। सभी तरह के लोगों का इस मामले में दबाव बढ़ता गया। लोग उसको छुड़ाने के लिए व्यापक समर्थन देने लगे। यहां तक कि गुवाहाटी से पत्रकार माजुली पहुंचने लगे और मामले की छानबीन करने लगे। सरकार और सेना पर उसे मुक्त कराने के लिए भयानक दबाव पडने लगा।

असम के कुछ अखबार अल्फा वालों के मुखपृष्ठ बन गए हैं। 'प्रतिदिन' और 'अमर असम' पर इस तरह के आरोप लगे हैं। सरकारी और कानूनी छानबीन जारी है। अल्फा के विचार और वक्तव्य कुछ अखबारों में आसानी से मिल जाते हैं। कलकत्ता स्थित बी.बी.सी. संवाददाता के भी अल्फा से अच्छे रिश्ते हैं। उसने अल्फा के कमांडर-इन-चीफ परेश बरुआ का विशेष साक्षात्कार भी लिया है। उसके माध्यम से बी.बी.सी. के दूसरे संवाददाता अल्फा के भूटान स्थित कैम्प में पहुंच सके थे। उन्होंने ऐसी 'स्टोरी' प्रसारित की जिससे अल्फा के भूमिगत आंदोलन को समर्थन मिले और उनकी उग्रवादी गतिविधियों की व्याख्या हो।

जब किसी व्यक्ति का असम में अपहरण होता है तो उस व्यक्ति के करीबी लोग इन्हीं लोगों (पत्रकारों) के पास दौड़ते हैं और अल्फा से अपने प्रिय की रक्षा की भीख मांगते हैं। अपनी इतनी अहमियत देखकर पत्रकारों में बहुत अहम आ गया है। सच बात तो यह है कि अल्फा को जो कुछ भी कहना होता है, वह कुछ चुने हुए पत्रकारों को फोन करता है और अपनी बातें रखता है।

हालांकि घोष के अपहरण की असम के सभी अखबारों ने निंदा की। कई अखबारों ने मुखपृष्ठ में संपादकीय भी लिखा। जब मीडिया इतना सजग था तो उसने संजय घोष की मृत्यु के बारे में परस्पर विरोधी बातों पर कैसे विश्वास कर लिया।

चार जुलाई, जिस दिन संजय घोष का अपहरण हुआ, से पांच अगस्त के बीच पुलिस और सेना ने संजय की मौत की कम से कम तीन बार घोषणा की। मृत्यु की इन सभी खबरों को असमिया अखबारों ने सुर्खियों में छापा। मीडिया ने उसकी मृत्यु के बारे में सेना या पुलिस से कोई प्रमाण नहीं मांगा।

इस तरह की विरोधी खबरों के कारण संजय के घर वाले अब तक इस आशा में हैं कि वह जीवित है और एक दिन लौट आएगा। मृत्यु की हर खबर उनके हृदय में कील की तरह चुभती है।

अब असम सरकार कहती है कि संजय घोष की मृत्यु उसके अपहरण के अड़तालीस घंटे के बाद ही कर दी गई थी। अल्फा ने २२ जुलाई को एक प्रेस विज्ञप्ति में बताया कि संजय घोष की एक नौका दुर्घटना में मृत्यु हो गई। इस प्रेस विज्ञप्ति के बारह घंटे बाद अल्फा ने अपनी खबरों का खंडन किया और कहा कि वह जिंदा है और उसे छोड़ दिया जाएगा।

जोरहाट में जनता दल के एक बुजुर्ग नेता दुलाल बरुआ से अल्फा ने १४ जुलाई को सम्पर्क किया और उन्हें आश्वस्त किया कि संजय जिंदा है और वे उसे एक अगस्त को सौंप देंगे। २८ जुलाई को परेश बरुआ ने संजय की पत्नी सुमिता से फोन पर लम्बी बातचीत की। उन्होंने संजय की पत्नी को आश्वासन दिया कि वह जिंदा है और ठीक है। सुमिता ने जब पूछा कि उसे इसका कोई प्रमाण मिल सकता है तो परेश ने जवाब दिया कि वह जीवित और स्वस्थ है, यही प्रमाण काफी है। अल्फा ने जो भी शर्तें रखी थीं, 'अवार्ड' ने उसका ईमानदारी से पालन किया। अल्फा ने संजय की रिहाई के लिए रेडक्रास सोसायटी से सम्पर्क किया और सूचना दी कि संजय उन्हें सौंपा जाएगा।

चार अगस्त को सेना ने अल्फा के कुछ संदेशों को सुना कि संजय घोष अरुणाचल की पहाड़ियों से कूद गया और अपनी जान दे दी। सेना ने बिना पूरी तरह प्रमाण जुटाए घोषणा कर दी कि संजय घोष की मृत्यु हो गई। उसी दिन अल्फा ने भी सेना की बातों से सहमति जताई। अखबारों ने भी बिना पूरी तफ़्तीश के मृत्यु की खबरें छाप दीं। राज्यसभा ने संजय घोष की मृत्यु पर संवेदना व्यक्त की और अध्याय समाप्त हो गया।

मीडिया का फर्ज बनता था कि वह मामले की तह तक जाता और उसकी मौत के प्रमाण जुटाने का प्रयास करता। विरोधी खबरों के बीच संजय के रिश्तेदार पूछते हैं कि क्या उसके जीवित रहने में अब किसी की दिलचस्पी है ? परस्पर विरोधी खबरों को आंख मूंद कर छापने वाले लोगों के लिए क्या यह शर्मनाक बात नहीं है ?

जख्मों पर छुरी फेरते हुए मीडिया अब संजय पर हुए अत्याचारों के विस्तृत विवरण दे रहा है और उसके शव को किस तरह दफन किया गया, इस पर विस्तार से लिखता है। अर्थात् कोई प्रमाण शेष नहीं रहा। क्या संजय के प्रति यह न्याय होगा, जिसने असम के लोगों के लिए अपनी जान तक कुर्बान कर दी।

Hindustan (Hindi)

21 Sep, 1998

बाघों को बचाने की व्यावहारिक योजना

□ उषा राय

मई की दोपहरी, चिलचिलाती धूप से बचने के लिए नीदरलैंड से आये वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड के नस्ल प्रबंधक जिकी जोसमैन और बाघ संरक्षक ब्रिगेडियर रणजीत तलवार ठंडी बीयर की चुस्कियां ले रहे थे। कार्बेट नेशनल पार्क से लगे टाइगर टॉप होटल में भारतीय बाघों की स्थिति पर कार्बेट फाउंडेशन के अधिकारियों से चर्चा हो रही थी। तभी एक ग्रामीण वहां आया और उत्तेजना से भर कर चिल्लाने लगा। बड़ी मुश्किल से समझ में आया कि वह क्या चिल्ला रहा था। 'मैं लुट गया, मैं मर गया', वह रो रहा था। भागता हुआ कार्बेट फाउंडेशन आया था क्योंकि उसने सुन रखा था कि कोई सहृदय व्यक्ति बाघों द्वारा मारे गये ग्रामीणों के पशुओं का मुआवजा दे रहा है। वह जानने आया था कि क्या यह सच है?

एक घंटे के भीतर जीप की व्यवस्था हुई और फाउंडेशन के अधिकारी ग्रामीण समेत कुछ और लोगों के साथ घटनास्थल पर चल पड़े। पशु मारे जाने की घटना राम गंगा के उस पार हुई थी, जो टाइगर टॉप से दो किलोमीटर की दूरी पर था। कुछ गांव वालों को साथ लेकर घटनास्थल पर पहुंचे, इस बार भैंस का शिकार हुआ था। बाघ ने उसकी गर्दन तोड़ दी थी और अपना शिकार छिपाना चाहता था, तभी दूसरी भैंस आ गई और वह भाग गया।

उस 'भैंस' का 'पंचनामा' हुआ अर्थात भैंस का विस्तृत विवरण, उम्र, वजन और आकृति ली गई और इसे गांव के मुखिया से प्रमाणित कराया गया। भैंस का मूल्य साढ़े तीन हजार आंका गया और उसे तुरंत अदा कर दिया गया। उस ग्रामीण ने अधिकारियों से एक फटे नोट बदल लेने का आग्रह किया क्योंकि उसकी मां फटे नोट देख कर बहुत नाराज होती है। पशु के मारे जाने और मुआवजा भुगतान की यह पूरी प्रक्रिया दो-तीन घंटे में समाप्त हो गई।

कार्बेट नेशनल पार्क के आसपास बाघों द्वारा पालतू जानवरों के मारे जाने की घटना आम है। वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड और बाघ संरक्षण कार्यक्रम के मिले-जुले प्रयास से मारे गये पशुओं का मुआवजा तुरंत अदा करने की योजना काफी प्रभावी रही है। पहले मुआवजा समय पर नहीं मिलने के कारण ग्रामीण बाघों को जहर दे देते थे। लेकिन अब उन्हें अपने जानवर का तुरंत मुआवजा मिल जाने से उनका गुस्सा कम हो गया है और इससे बाघ संरक्षण कार्यक्रम को सफलता मिली है।

पिछले वर्ष अक्तूबर-नवम्बर में बाघों को जहर देने की घटनाओं में काफी इजाफा हुआ था। सुरक्षित वनों में बाघों पर हो रहे इस हमले से कार्बेट, दुधवा और कटरनिया घाट के संरक्षकों के कान खड़े हुए। यह सही है कि बाघों के संरक्षण के लिए जीप, नाव और वायरलैस सेट थे, लेकिन मनुष्य द्वारा उत्पन्न इस भयानक स्थिति से निपटना एक टेढ़ी खीर था, लेकिन जरूरी भी। गांव वाले अपने मारे गये पशु की लाश पर कीटनाशक दवायें छिड़क देते थे और बाघ जब इसे खाता था तो मर जाता था। इस प्रक्रिया में बड़ी संख्या में बाघ मारे गये। पहले ही बाघों की संख्या चार हजार से ढाई हजार तक पहुंच गई है।

बाघों को जहर देने के मामले ने संरक्षकों की चिन्ता बढ़ा दी। बाघ संरक्षकों की संचालन समिति के समक्ष इस बाबत रिपोर्ट सौंपी गई। आंध्र प्रदेश में दो वर्ष के भीतर अट्ठाईस बाघ जहर देकर मारे गये थे। आंध्र प्रदेश के उग्रवादियों ने ग्रामीणों को जहर देने के लिए उकसाया था। पालतू जानवरों के बाघ द्वारा मार देने पर भी उन्हें उचित मुआवजा नहीं मिलता था। इसलिए उग्रवादी गांववालों को बाघ मारने के लिए उकसाते थे।

मारे गये पशुओं के लिए मुआवजा देने की योजना इस वर्ष जनवरी से लागू की गई। एक लाख की राशि गैर सरकारी संस्था के कुछ समर्पित लोगों के पास रखी गई। वे पार्क के अधिकारियों के साथ दुर्घटना स्थल पर जाते हैं और मामले की पूरी पड़ताल करते हैं। भुक्तभोगी व्यक्ति को तुरंत मुआवजा अदा कर दिया जाता है। जानवर के बचे हुए अंश को जला दिया या अच्छी तरह दफन कर दिया जाता है, ताकि कोई उस पर जहर न डाल सके। इस कार्य को अंजाम देने के लिए गाड़ी मुहैया कराई जाती है।

बाघ संरक्षण की इस योजना की शुरूआत कार्बेट, दुधवा कटरनिया घाट में हुई। बाद में उसे इस वर्ष जून से पलामू (बिहार) में लागू किया गया। उत्तर प्रदेश में जानवरों का मुआवजा उसके असली मूल्य के बराबर दिया जाता है। इसे बाघ संरक्षण प्रोग्राम और सरकार मिल कर वहन करते हैं।

आंध्र प्रदेश में पैसों की कमी नहीं है, लेकिन घटनास्थल तक पहुंचने के लिए वाहन ही नहीं है। बाघ संरक्षण प्रोग्राम ने दो जीप मुहैया कराई है, जो नागार्जुन सेल, श्री सैलम, इतुरनगरम और पक्खल वाइल्ड लाइफ सैन्चुरी के लिए काफी नहीं है।

आज जब बाघों की संख्या घट रही है और उनके लुप्त होने का खतरा बढ़ गया है, ऐसे में मुआवजा देने की योजना काफी कारगर सिद्ध हुई है। यहां बाघ संरक्षण प्रोग्राम, गैर सरकारी संस्था तथा राज्य सरकार मिल कर काम कर रही है। इन दिनों कहीं से भी बाघों को जहर देने की एक भी घटना नहीं घटी है। समय ही बतायेगा कि बाघ संरक्षक भाग्यशाली थे, अथवा गांव वालों ने अपना रूख बदल लिया है।

केवल उत्तर प्रदेश में जनवरी से जून के बीच 156 जानवर मारे गये और ग्रामीणों को 1,85670 रुपये बतौर मुआवजा दिया गया।

अभी तो इस योजना से बाघों को राहत मिली है। लेकिन तब क्या होगा जब, 1999 के अंत में बाघों के संरक्षण के लिए अंतरराष्ट्रीय कोष समाप्त हो जायेगा।